उपनिषदों में शिवतत्त्व–स्वरूप एवं महत्त्व

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– इन चार प्रकार के पुरूषार्थों में परम निःश्रेयस मोक्ष ही मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है। चौरासी लाख योनियों में बार–बार जन्म–मरण की प्राप्तिरूप घोर–संसार से पार होने के लिये मनुष्य को परमशान्ति–रूप मोक्ष की प्राप्ति के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये। परम्परा से मोक्षसाधन हेतु उपनिषदों का अध्ययन आवश्यक माना गया है।

वेद के चार भागों(संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्) में केवल उपनिषदों में ही 'ज्ञान' का प्रतिपादन किया गया है। अन्य(संहिता आदि) भागों में मुख्यतः कर्म, उपासना आदि का विवेचन किया गया है। अतः उपनिषद्–विद्या अन्य विद्याओं की अपेक्षा प्रधानतम एवं गौरवमयी है। इसी विद्या को लक्ष्य करके कहा जाता है कि **"सा विद्या या विमुक्तये"** (वही वास्तविक विद्या है, जो मोक्ष दिलाने में सहायक हो)।

गीता(10/32) में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि "मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या हूँ" (**अध्यात्मविद्या विद्यानाम्**)। श्रुतियों में उपनिषदों को मोक्षदायिनी विद्या, अध्यात्मविद्या तथा पराविद्या आदि कहा गया है। यही विद्या सब अनर्थों के मूलभूत संसार की निवृत्ति करती हुई परमानन्दरूप मोक्ष की प्राप्ति का मुख्य कारण बतायी गयी है। इसीलिये इसे सबसे श्रेष्ठ कहा गया है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से "जो समस्त अनर्थों को उत्पन्न करनेवाले संसार का नाश करती, संसार की कारणभूत अविद्या को शिथिल करती तथा ब्रह्म की प्राप्ति कराती है, उसे उपनिषद् कहते हैं।" इसका दूसरा नाम वेदान्त भी है। यह वेदों का अन्तिम भाग है इसलिये यह वेदान्त है। अथवा वेद का सिद्धांत चरमरूप में उपनिषदों में ही वर्णित है इस कारण इसे वेदान्त नाम दिया गया है।

सनातन हिन्दूधर्म के सिद्धांत–प्रतिपादक प्रमुख ग्रन्थों में(जिन्हें प्रस्थान त्रयी कहते हैं) गीता, ब्रह्मसूत्र तथा उपनिषद् आते हैं। वास्तव में उपनिषदों के सिद्धांतों का ही निरूपण गीता एवं ब्रह्मसूत्र में हुआ है। कई बार गीता को भी गीतोपनिषद् कहा जाता है। वेदान्त के सभी आचार्यों ने अपने–अपने भाष्य इन तीनों पर लिखे हैं।

उपनिषदों को यद्यपि वेदों का अन्तिम भाग माना जाता है फिर भी वर्तमान में उपलब्ध सभी उपनिषदों को वेदों का भाग नहीं माना जाता। वर्तमान में पायी जानेवाली उपनिषदों की संख्या 225 से ऊपर हो सकती है जिनमें से बहुत सी अर्वाचीन हैं। उदाहरण के लिये 'अल्लोपनिषद्' जिसमें 'अल्लाह' आदि का उल्लेख है जो निश्चितरूप से अवैदिक हैं। प्राचीन आचार्यों ने जिनपर भाष्य लिखा है वे संख्या में अत्यल्प हैं(मात्र 11–13)। यद्यपि ये उपनिषदें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन इनके अलावा भी अन्य उपनिषदें हैं जो वैदिक मानी जाती हैं। इस लेख में हम मुख्य–मुख्य उपनिषदों को जिन्हें वैदिक माना जाता है उनके आधार पर ही शिव–स्वरूप पर विचार करेंगे। वैसे तो प्रमुख उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है परन्तु इनमें से बहुत सी उपनिषदें बाद की हैं और उनमें साम्प्रदायिक बातें भी हैं।

उपनिषदों में वैदिक संहिताओं के मन्त्रों की आध्यात्मिक एवं तात्त्विक व्याख्या के साथ–साथ उनका विस्तार भी किया गया है। संहिताओं के बहुत से मन्त्र उपनिषदों में यथावत् पाये जाते हैं तथा कुछ थोड़े–बहुत परिवर्तन के साथ। उनमें कुछ नये मन्त्र भी पाये जाते हैं। कुछ उपनिषदों(यथा 'ईशोपनिषद्') के तो सभी मन्त्र वेदों से ही लिये गये हैं।

उपनिषदों में रुद्र–शिव संबन्धी विचारों ने अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त कर लिया है। रुद्र की प्रधानता का परिचय हमें छान्दोग्य(3/7/4), वृहदारण्यक(3/9/4), मैत्रेयी(6/5 आदि) महानारायणोपनिषद्(12/2 आदि), नृसिहोंत्तरतापिनि(3), श्वेताश्वतर(3/2–5, 8, 11–12, 17; 4/1, 10, 11, 14–17; 5/14 तथा 6/7 आदि) एवं केन(4/1–3) आदि प्राचीन उपनिषदों में प्राप्त होता है। बाद की उपनिषदों जैसे अथर्वशिरस्(3/5 आदि), रुद्रहृदयोपनिषद् (4–16), नीलरुद्रोपनिषद्, गर्भोपनिषद्, कैवल्योपनिषद्, जाबाल्युपनिषद् एवं रुद्रोपनिषद् आदि में भी शिव के उत्कृष्टस्वरूप की झलक मिलती है।

श्वेताश्वतर–उपनिषद् पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक कर्मकाण्ड से अलग होने के कारण, कर्मकाण्ड से स्वतंत्र तथा अंशत: विरोधीरूप में विकसित होनेवाली दार्शनिक विचारधारा में, रुद्र को जगत् की सर्वोत्कृष्ट शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। उपनिषदों की इस प्राचीन विचारधारा में सांख्य, योग तथा वेदान्त, सभी के तत्त्व घुले–मिले हैं। जगत् की कारण–शक्ति के रूप में त्रिगुणमयी माया की धारणा भी उभरकर उपनिषदों में आयी है। अत: वहाँ रुद्र को माया का अधिपति तथा संसार का सर्वतोभावेन ईश घोषित कर दिया गया है।

श्वेताश्वतर उ.(3/2) में कहा गया है कि एकमात्र रुद्र ही इस संसार को अपनी शक्ति से संचालित करते हैं। वे संसार के प्राणियों की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं तथा अन्त में संहार करते हैं। वे सबके अन्दर व्याप्त हैं। यही नहीं, वे सम्पूर्ण देवों की भी उत्पत्ति एवं अस्तित्व के हेतु हैं। उन्होंने ही हिरण्यगर्भरूपी प्रजापति को आदि में उत्पन्न किया था(श्वेता. उ. 3/4)।

श्वेता.(3/7) में कहा गया है कि ईश(रुद्र) महान् एवं उत्कृष्ट परब्रह्म हैं, उन्हें जान लेने पर मनुष्य अमर हो जाता है। पुन: श्वेता(3/11) में कहा गया है कि उनके सब ओर मुख, सिर एवं ग्रीवा हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियों की हृदयगुहा में वर्त्तमान हैं, वे सर्वगत तथा सर्वव्यापी हैं। श्वेता.(3/14, 15) में ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त (10/90/1–2) के दो मन्त्र(**सहस्रशीर्षा तथा पुरुष एवेदं**) उद्धृत करके ऋ. वे. के यज्ञ–पुरुष से शिव का तादात्म्य किया गया है। श्वे.(4/10) में कहा गया है कि महेश्वर–रुद्र माया के अधिपति हैं, **"मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।"** और वहीं पर आगे श्वेता.(4/16) में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि "सब भूतों में सूक्ष्मरूप से प्रविष्ट और संसार को परिव्याप्त कर लेनेवाले शिव को जानकर मनुष्य सब बन्धनों से छूट जाता है।"

श्वेताश्वतर उपनिषद् के ये ईशान, महेश्वर, रुद्र अथवा शिव निश्चित रूप से प्राचीनतर वैदिक

रुद्र के ही रूप हैं। यहाँ ऐसा नहीं समझना चाहिये कि रुद्र, शिव, ईशान तथा महेश्वर आदि शब्द उपनिषदों में विकासमान नये दार्शनिकतत्त्व ब्रह्म के लिये केवल विशेषण मात्र हैं और वैदिक संहिताओं अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों में पाये जानेवाले रुद्र देवता तथा उपनिषदों के रुद्र में कोई साम्य नहीं है। श्वेताश्वतर में परब्रह्म के रूप में मान्य रुद्र और शतरुद्रिय में वर्णित रुद्र में साम्य की शृंखला स्पष्ट है। शतरुद्रिय के दो मन्त्र(वा. सं. 16/2, 3) श्वेताश्वतर(3/5, 6) में उद्घृत किये गये हैं। इन मन्त्रों का उल्लेख इसे स्पष्ट करता है कि शतरुद्रिय के रुद्र एवं इस उपनिषद के रुद्र दोनों एक ही हैं। अतः स्पष्ट है कि उपनिषदों की दार्शनिक विचारधारा में विश्वास रखनेवाले ब्रह्मज्ञानी लोग शिव को परब्रह्म मानकर उन्हें जगत् का आदितत्त्व समझते थे। उनका विश्वास था कि इस परम पुरुष का ज्ञान सांख्य तथा योग की प्रक्रिया से ही संभव है(श्वे. 6/13)। उसको जानकर मनुष्य सांसारिक बंधनों से छूट जाता है, इसलिये मोक्ष की इच्छा करनेवालों को उन्हीं की शरण लेनी चाहिये (श्वे. 6/18)। यही कारण है कि वेदान्त, सांख्य तथा योगादि के सिद्धान्तों के समर्थकों ने वैदिक कर्मकाण्ड की उपेक्षा की है। दार्शनिक ग्रन्थों में प्रायः सर्वत्र कहा गया है कि मनुष्य को यज्ञादि काम्यकर्म(स्वर्गादि की प्राप्ति हेतु किया कर्म) सर्वथा छोड़ देना चाहिये क्योंकि इनसे जो पुण्य उत्पन्न होगा उससे मनुष्य स्वर्ग जाता है और पुण्य के क्षीण होनेपर पुनः उसे मृत्युलोक में आना पड़ता है। मोक्ष तबतक नहीं मिल सकता जबतक मनुष्य के पुण्य और पाप दोनों ही नष्ट न हो जायँ। वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में मोक्ष की धारणा पर बल नहीं दिया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों का कर्मकाण्ड केवल ऐहिक सुखों या स्वर्ग के लिये है। इसके विपरीत दार्शनिक विचारधारा, जो उपनिषदों की है, मोक्ष का पक्षपाती है। और यह मोक्ष शिव का आश्रय लेने से प्राप्त होता है न कि वैदिक कर्मकाण्डों से।

श्वेताश्वतर उपनिषद् शिव-स्वरूप प्रतिपादक सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन उपनिषद् माना जाता है। इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा अन्य संहिताओं के मन्त्र पाये जाते हैं। जो मन्त्र इसमें पाये जाते हैं उनमें से कई मन्त्र मुण्डक एवं कठ उपनिषदों में भी पाये जाते हैं। इस उपनिषद् में ईश्वर, जीव एवं जड़ जगत् के स्वरूप तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धविषयक सत्य पाये जाते हैं। मोक्ष का मार्ग परमात्मा का ध्यान है। ध्यान का मार्ग ही सामान्यतः उपनिषदों की विशेषता है। इस ध्यान को फलोत्पादक बनाने के लिये कतिपय योगक्रियाएँ भी बतायी गयीं हैं। अन्तिमफल सर्वव्यापी परमात्मा का दर्शन है जो शाश्वत आनंद से युक्त है। उपनिषदों का ईश्वरवाद श्वेताश्वतर उप. में अपनी पूर्णता को पहुँच गया है और ईश्वर भी व्यक्तित्व से युक्त हो गया है। वहाँपर परमात्मा के वाचक शब्द अत्यन्त सामान्य हैं। उसे रुद्र, शिव, ईशान तथा महेश्वर से अभिन्न बतलाया गया है और उसकी शक्तियों को ईशानी कहा गया है।

यह उपनिषद् बाद के ग्रन्थों की भाँति किसी सम्प्रदाय विशेष से संबद्ध नहीं है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य एवं विभिन्न मतों के आचार्यों ने इससे उद्धरण दिये हैं। इसकी रचना भगवद्गीता से पूर्व

हो चुकी होगी क्योंकि गीता में इस उपनिषद् के डेढ़ श्लोक यथावत् प्राप्त होते हैं (श्वेता. उप. 3/16, 17 की तुलना गीता के 13/13, 14 से करें)। इस उपनिषद् के धार्मिक – दार्शनिक चिन्तन का स्वरूप औपनिषद् (ज्ञानमार्गी) होनेपर भी अन्य उपनिषदों की अपेक्षा उत्तरकालीन (बाद के) भक्तिमार्ग के अधिक समीप है। इसका ईश्वर और परमानन्द का वर्णन प्रेम और स्तुति से ओत – प्रोत है। इस ग्रन्थ का अन्त उस ईश्वर के समक्ष आत्मनिवेदन की अभिव्यक्ति के साथ होता है जो पुरुष की बुद्धि में स्वयं प्रकाशित होता है। अतएव श्वेताश्वतर उपनिषद् भक्तिसम्प्रदाय के द्वारपर अवस्थित है एवं अपनी प्रेमपूर्ण अभ्यर्थना रुद्र – शिवपर अर्पित करती है, वासुदेव कृष्णपर नहीं, जैसा कि आगे चलकर बाद में जब भक्ति अपने पूरे प्रवाह में थी, भगवद्गीता ने किया। वासुदेव कृष्ण का एक ऐतिहासिक आधार था और उनको परमेश्वररूप में चित्रित करनेवाली परिस्थितियाँ बाद में उपस्थित हुईं। परन्तु श्वेताश्वतर उपनिषद्काल में सर्वोच्च देव रुद्र – शिव ही थे एवं भक्ति या अनुराग के अंकुर जो उस समय प्रकट हुए थे, उन्हीं के लिये ही प्रेरित थे।

इस उपनिषद् में रुद्र – शिव की पत्नी का उल्लेख नहीं मिलता। केन उप. में जो निश्चितरूप से एक प्राचीन उपनिषद् है, उमा का नाम मिलता है। उन्हें हैमवती या हिमवान् की पुत्री कहा गया है (केन उप. 3/12)। अथर्वशिरस् रुद्र से संबंधित एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है जो बहुत बाद का माना जाता है। इसमें भी श्वेताश्वतर उप. के कई श्लोक थोड़ा – बहुत पाठान्तर के साथ उपलब्ध होते हैं। इस उपनिषद् में रुद्र को सर्वोच्च देवता बताने के साथ – साथ उसे प्राप्त करने के लिये पाशुपतव्रत का विधान भी बताया गया है। इसमें शिवभक्तों के लिये मन्त्रजप के अनन्तर भस्म लगाने का विधान किया गया है जिसे जीवनबन्धन से मुक्ति दिलानेवाला माना गया है।

भगवान् शिव की अष्ट मूर्तियों (शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव) का उल्लेख भी उपनिषदों में पाया जाता है। उदाहरण के लिये नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद् में अष्टमूर्तियों को इस प्रकार नमस्कार किया गया है –

शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, भवाय जलमूर्तये नमः, रुद्राय अग्निमूर्तये नमः, उग्राय वायुमूर्तये नमः, भीमाय आकाशमूर्तये नमः, पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, महादेवाय सोममूर्तये नमः, ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः।

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमा।

सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः।। (प्रथम खण्ड)

'**ॐ महादेवाय नमः**', '**ॐ महेश्वराय नमः**', '**ॐ शूलपाणये नमः**', '**ॐ पिनाकधृषे नमः**', आदि शिव के अष्टाक्षर मंत्र हैं। ये अष्टमूर्ति और प्रणव के आठ भागों के सूचक माने जाते हैं। अकार, उकार, मकार, विन्दु, नाद, शब्द, काल और कला से युक्त प्रणव 'दीर्घप्रणव' है। दीर्घप्रणव के अकार, उकार, मकार, नाद, विन्दु, कला, अनुसंधान और ध्यान ये आठ प्रभेद भी माने गये हैं। इनमें 'अकार' सद्योजात, 'उकार' वामदेव, 'मकार' अघोर, 'नाद' तत्पुरुष, 'विंदु' ईशान और 'कला'

व्यापक है। 'अनुसंधान' नित्य है। 'ध्यान' ब्रह्मस्वरूप है। इस प्रकार सर्वव्यापक अष्टाक्षर हैं।

अकारोकारमकारनादविन्दुकलानुसंधानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति।।"

(नारायण पूर्वतापिन्युपनिषद्, प्रथम खण्ड)

अतः शिवपुराण के शतरुद्र संहिता के अध्याय 2 – 3 तथा अन्य स्थलोंपर जिन अष्टमूर्तियों का उल्लेख है उनका उपनिषदीय आधार है।

भगवान् शिव ब्रह्म के रूप में

श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रारंभ में ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा उठायी गयी है। वहाँ पूछा गया है कि जगत् का कारण जो ब्रह्म है, वह कौन है?

किं कारणं ब्रह्म (1/1)

आगे चलकर ब्रह्म के स्थानपर रुद्र एवं शिव शब्द का प्रयोग किया गया है। उपरोक्त प्रश्न के समाधान में बताया गया है कि जगत् का कारण स्वभाव इत्यादि न होकर स्वयं भगवान् शिव ही इसके अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं –

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य
इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः
..... (3/2)

अर्थात् –जो अपनी शासन–शक्तियों के द्वारा लोकोंपर शासन करते हैं, वे रुद्र भगवान् एक ही हैं। इसीलिये विद्वानों ने जगत् के कारण के रूप में किसी अन्य को स्वीकार नहीं किया है। वे प्रत्येक जीव के भीतर स्थित हैं, समस्त जीवों का निर्माणकर पालन करते हैं तथा प्रलय में सबको समेट भी लेते हैं।

वहींपर आगे कहा गया है कि–

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।। (श्वेत. उप. 3/4)

अर्थात्– सबको अपने शासन में रखनेवाले जो रुद्ररूप परमेश्वर(इन्द्रादि समस्त) देवताओं को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं तथा जो सबके अधिपति और महान् ज्ञानी–सर्वज्ञ हैं, जिन्होंने सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वे परमदेव परमात्मा हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

इस प्रकार शिव और रुद्र ब्रह्म के पर्यायवाची सिद्ध होते हैं। शिव को रुद्र इसलिये कहा जाता है कि वे अपने उपासकों के सामने अपना रूप शीघ्र ही प्रकट कर देते हैं –

कस्मादुच्यते रुद्रः? यस्मादृषिभिः ..... द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते।

(अथर्वशिरस् उप. 4)

इसीलिये भगवान् शिव को आशुतोष भी कहा जाता है।

भगवान् शिव को रुद्र इसलिये भी कहते हैं कि ये 'रुत्' अर्थात् दुःख को विनष्ट कर देते हैं। "रुत = दुःखम्, द्रावयति = नाशयतीति रुद्रः।" श्वेताश्वतर (3/3, 4, 11; 4/10, 12, 14, 18, 21 इत्यादि) के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी शिव को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है। कैवल्योपनिषद् में कहा गया है-

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।।
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।।
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये।। (1/6-9)

"जो अचिन्त्य है, अव्यक्त और अनन्तस्वरूप है, कल्याणमय है, प्रशान्त है, अमृत है, जो ब्रह्म अर्थात् निखिल ब्रह्माण्ड का मूल कारण है, जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं, जो एक अर्थात् अद्वितीय है, विभु और चिदानन्द है, रूपरहित और अद्भुत है, उस उमासहित अर्थात् ब्रह्मविद्या के साथ परमेश्वर को, समस्त चराचर के स्वामी को, प्रशान्तस्वरूप, त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव अर्थात् परात्पर परब्रह्म को-जो सब भूतों का मूलकारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्या से परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यान के द्वारा प्राप्त करते हैं।"

"वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर-अविनाशी परमात्मा है, वही विष्णु है, वह प्राण है, वह काल है, वह अग्नि है और वह चन्द्रमा है। जो कुछ हो चुका है और जो भविष्य में होनेवाला है, वह सब वही है; उस सनातन तत्त्व को जानकर प्राणी मृत्यु के परे चला जाता है। इसके अलावा मुक्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।"

जाबालोपनिषद् में कहा गया है कि -

.....रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे ..... (जाबालोपनिषद्-1)

अर्थात्- रुद्र तारनेवाले ब्रह्म हैं, ज्ञानी को देहत्याग करते समय रुद्र भगवान् ॐकार मन्त्र का उपदेश देते हैं। अथर्वशिरस् उप. में कहा गया है-

य ओङ्कारः स प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तः योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत् सूक्ष्मं यत् सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म स एकः रुद्रः स ईशानः स भगवान् महेश्वरः स महादेव।[1] (अथर्वशिरस् उप. 2/3)

1. इस मन्त्र के कुछ अप्रासांगिक पद छोड़ दिये गये हैं।

अर्थात्– "जो ॐकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है वह अनन्त (शक्तिस्वरूप उमा) है, जो उमा है वही तारकमन्त्र ब्रह्मविद्या है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है, जो सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है वही शुद्ध है, जो शुद्ध है वही विद्युत-अभिमानी उमा है, जो उमा है वही परब्रह्म है, वही अद्वितीय रुद्र है, वही ईशान है, वही भगवान् महेश्वर है और वही महादेव है।"

रुद्रहृदयोपनिषद् में उल्लेख है कि शुकदेवजी व्यासजी के चरणों में एक बार शिर झुकाकर प्रणामकर बोले "भगवन्! बतलाइये, सब वेदों में किस एक देवता का प्रतिपादन हुआ है और किसमें सारे देवता वास करते हैं? किसकी सेवा-पूजा करने से सर्वदा सब देवता मुझपर प्रसन्न रहेंगे?"

शुक्रदेवजी की इस बात को सुनकर उनके पिता उनसे बोले "शुक! सुनो– भगवान् रुद्र सर्वदेवस्वरूप हैं, और सब देवता रुद्रस्वरूप हैं। ..... जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं, वे शंकरजी को नमस्कार करते हैं और जो भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान् की अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वज अर्थात् शंकरजी की ही पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष अर्थात् भगवान् आशुतोष से द्वेष करते हैं, वे जर्नादन से ही द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नहीं जानते, वे केशव को भी नहीं जानते। रुद्र से बीज उत्पन्न होता है और उस बीज की योनि(अर्थात् क्षेत्र) भगवान् विष्णु हैं। जो रुद्र हैं वे स्वयं ब्रह्म हैं। .....रुद्र ब्रह्मा और विष्णुस्वरूप हैं। और अग्नि- सोमात्मक समस्त जगत् भी रुद्र ही है। सृष्टि में जितने पुँल्लिग प्राणी हैं सब महेश्वर हैं और जितने स्त्रीलिंग प्राणी हैं, सब भगवती उमा हैं। सारी स्थावर और जंगमस्वरूप सृष्टि उमा-महेश्वर रूप है।[1] समस्त व्यक्त जगत् उमा का स्वरूप है और अव्यक्त जगत् महेश्वर का स्वरूप है। ..... प्रयोजन के अनुसार रुद्र ने अपनी एक ही मूर्ति को तीन प्रकार से व्यवस्थित किया है। धर्म रुद्रस्वरूप है, जगत् विष्णुस्वरूप और समस्त ज्ञान ब्रह्मास्वरूप है। 'श्रीरुद्र रुद्र रुद्र', इस प्रकार से जो बुद्धिमान् जपता है, इससे समस्त देवों का कीर्तन हो जाने के कारण वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।" (रुद्रहृदयोपनि. 2-17)

सर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वे देवाःशिवात्माकाः .....
.....ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
.....ये द्विषन्ति विरुपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम् ।
.....रुदात्प्रवर्तते बीजं बीजयोनिर्जनार्दनः। यो रुद्रः
सस्वयं बह्मा यो बह्मा स हुताशनः।
बह्मविष्णुमयो रुद्र अग्निसोमात्मकं जगत्।.....
प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधाकृता।
धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः।।
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते। (4-17)

1. शिवपुराण में भी इसी तरह की बातें कही गयीं हैं(शि. पु., वायवीय सं., उत्तरखण्ड, अध्याय 4)।

जाबाल्युपनिषद् में जाबालि पिप्पलाद से महादेवजी की उपासना के सन्दर्भ में कहते हैं कि "पशुपति ही अहंकार से युक्त होकर जब सांसारिक जीव बनते हैं, तब पशु कहलाते हैं। पाँच कृत्यों[1] से संपन्न सर्वज्ञ एवं सर्वेश्वर महेश्वर ही पशुपति हैं.....जीव ही पशु कहलाते हैं तथा उनके स्वामी..... सर्वज्ञ ईश्वर ही पशुपति हैं।"

पशुपतिरहंकाराविष्टः संसारी जीवः स एव पशुः। सर्वज्ञः पंचकृत्यसंपन्नः सर्वेश्वर ईशः पशुपतिः .....तत्स्वामिन .....सर्वज्ञ ईशः पशुपतिः। (जाबाल्युपनिषद्)

यहाँपर अभिप्राय यह है कि पशुपति ही समस्त जीवों का कर्त्ता एवं उद्धरता है। वही परम ब्रह्म है।

नीलरुद्रोपनिषद् में भगवान् शंकर की प्रार्थना में उन्हें श्रीकृष्ण और श्रीहरि आदि से अभिन्न बताया गया है। यहाँपर भी यही अभिप्राय है कि भगवान् रुद्र ही परम ब्रह्म हैं। निम्नलिखित उद्धरण देखें-

"विलोहित(अधिक रक्तवर्ण) नीलकण्ठ भगवान्! हमने अवतार ग्रहण करते हुए आपको देखा है। आपको (उस अवतारूप में) या तो गोपों ने देखा है या जल भरनेवाली गोपसुन्दरियों ने देखा है। योगियों के लिये भी दुर्दर्श आपको(उस श्यामसुन्दररूप में) विश्व के समस्त प्राणियों ने देखा है। उस देखे हुए श्रीकृष्णरूपधारी आपको नमस्कार । .....आप ही महान् शक्तिशाली इन्द्र हैं[2] .....। जो भगवान् शंकर .....अपने निज जनों के लिये हरितवर्ण श्रीहररूप बन जाते हैं.....।" (नीलरुद्रोपनिषद् 2, 3 कल्याण, उपनिषद् अङ्क पृ. 640-41)

महानारायणोपनिषद् में कहा गया है-

यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वा धियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भ पश्यति जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु (9/3)

उपरोक्त मंत्र थोड़ा परिवर्तन के साथ श्वेताश्वतरोपनिषद् में दो स्थानों(3/4 तथा 4/12) पर आया है जिसका अभिप्राय यह है कि रुद्ररूप परमेश्वर सभी देवताओं को उत्पन्न करते हैं, उनके अधिपति हैं और महान् ज्ञानी हैं। सृष्टि के आदि में उन्होंने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था।

महानारायण उपनिषद् में भगवान् शिव की अनेक नामों से वन्दना करते हुए यह कहा गया है-

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिः ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ..... (17/5)

इसका अभिप्रायः यह है कि भगवान् शिव सभी विद्याओं, भूतों एवं ब्रह्मादि सभी के अधिपति हैं। अर्थात् भगवान् शिव ही ब्रह्म या परमेश्वर हैं।

1. सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह-ये महेश्वर के पाँच कृत्य कहलाते हैं।
2. यहाँ इन्द्र का तात्पर्य देवराज इन्द्र नहीं, जो असुरों से पराजित होते हैं। यहाँ इन्द्र का तात्पर्य गोविन्द से है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रसिद्ध मन्त्र(3/2) को हम अथर्वशिरस् उपनिषद् में थोड़े रूपान्तर के साथ पाते हैं –

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता।।

(अथर्वशि. उ. 2/5)

अर्थात्– जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासनशक्तिओं द्वारा इन सब लोकोंपर शासन करते हैं–उनका नियमानुसार संचालन करते हैं, वे रुद्ररूप परमेश्वर एक हैं। इन समस्त लोकों की रचना करके उनकी रक्षा करनेवाले परमेश्वर प्रलयकाल में स्वयं ही इन सबको समेट लेते हैं, अर्थात् अपने में विलीन कर लेते हैं। उस समय इनकी भिन्न–भिन्न रूपों में अभिव्यक्ति नहीं रहती।

तैत्तिरीयारण्यक में कहा गया है–

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।
पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः।
विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्।
सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु। (तैत्तिरीयारण्यक 10/16)

अर्थात्– जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरों में जीवरूप से प्रविष्ट हैं उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वह ब्रह्मलोक में ब्रह्मारूप से, प्रजापतिलोक में प्रजापतिरूप से, सूर्यमण्डल में वैराटरूप से तथा देह में जीवरूप से स्थित हुआ है–उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्र को बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा वह सब प्रपंच रुद्र की सत्ता से भिन्न नहीं हो सकता। यह सबकुछ रुद्र ही है, इस रुद्र के प्रति प्रणाम हो।

केन उपनिषद् में कथा आती है कि परब्रह्म की कृपा से देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की। इस विजय से देवता गर्वोन्वित हो उठे। फलस्वरूप उनके गर्व को समाप्त करने के लिये भगवान्(रुद्र) यक्ष का रूप धारण कर उनके समक्ष प्रकट हो गये। उस यक्ष के परिचय को जानने के लिये अग्नि एवं वायु क्रमशः उसके पास पहुँचे पर वे उससे पराजित हो बिना परिचय पाये ही वापस लौट आये। तब इन्द्र स्वयं ही यक्ष का परिचय प्राप्त करने गये। इन्द्र के आते ही यक्ष अन्तर्धान हो गया। अन्तर्धान होने के बाद भी इन्द्र वहीं खड़े रहे। इतने में ही उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष खड़ा था ठीक वहीं अत्यन्त शोभामयी हिमाचलकुमारी उमादेवी प्रकट हो गयी हैं। इन्द्र के पूछने पर उमादेवी ने दिव्य यक्ष का इस प्रकार परिचय दिया –

सा ब्रह्मेति होवाच । ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति।। (के. उ. 4/1)

उमादेवी ने इन्द्र से कहा कि "तुम जिन दिव्य यक्ष को देख रहे थे और जो इस समय अन्तर्धान हो गये हैं वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं।" इस प्रसंग में उमादेवी ने जिस ब्रह्म का परिचय दिया है, कुछ विद्वानों ने उसे भगवान् रुद्र का ही परिचय माना है। रुद्र ने ही यक्ष का रूप धारण किया था। शिवपुराण में देवी ने भी इसी प्रकार दिव्यरूप धारणकर देवताओं का असुरों पर विजय-संबन्धी अभिमान भंजित किया था(शिव पु. उमासंहिता अ. 48)।

योगशिखोपनिषद् में शिव के स्वरूप की झलक वहाँ प्राप्त होती है जहाँपर यह बताया गया है कि यदि मनुष्य में काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ आदि रजोगुणोत्पन्न तत्त्वों का अभाव हो तथा वह जन्म, मृत्यु, कार्पण्य, शोक, तन्द्रा, भूख, प्यास, तृष्णा, लज्जा, भय, दुःख, विषाद्, हर्ष आदि दोषों से रहित हो तो वह शिव हो जाता है। अर्थात् इन सब(अव) गुणों के साथ जीव शिवस्वरूप से अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता। स्पष्ट है कि उपरोक्त सभी गुणों का अभाव तो मात्र भगवान् में ही हो सकता है।

क्रामक्रोधभयं चापि मोहलोभमथो रजः।
जन्म मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधा तृषा।।
तृष्णा लज्जा भयं दुःखं विषादो हर्ष एव च।
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सजीवः शिव उच्चते ।। (योगशिखोपनिषद् 1/10-11)

इन श्लोकों को शिवतत्त्व की परिभाषा भी मानी जा सकती है। अर्थात् भगवान् शिव में इन सारे अवगुणों का अभाव है। फलस्वरूप वे ब्रह्मस्वरूप हैं क्योंकि ब्रह्म में इस तरह की अपूर्णता नहीं होती।

शरभोपनिषद् में कहा गया है कि एकमात्र शिव ही नित्यतत्त्व अथवा परमसत् है, जगत् की शेष सभी वस्तुएँ असत् हैं। अद्वैत-वेदान्त के 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' जैसी बात यहाँ कही गयी है।

एक एव शिवो नित्यस्ततोऽन्यत्सकलं मृषा। (शरभोपनिषत् 30)

आत्मोपनिषत् में कहा गया है कि शिवसंज्ञावाली आत्मा सदैव एक एवं शुद्ध होती है।

आत्म संज्ञः शिवः शुद्ध एक एवाद्वयः सदा। (आत्मोपनिषत् 1)

भाव यह है कि आत्मा जब समस्त पाशों से मुक्त हो जाता है तो वह अद्वैतस्वरूप शुद्ध शिव हो जाता है। जैसा स्कन्दोपनिषत् में कहा गया है-

पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः (स्कन्दोपनिषत् 7)

अर्थात्- पाशों से बँधे रहनेवाला जीव तथा पाशों से मुक्त सदाशिव कहलाता है। जीव पाशों में बँधा रहने के कारण पशु कहलाता है। पशुओं को पाशों से मुक्त करनेवाला शिव कहलाता है, तथा पाशमुक्त होनेवाला जीव स्वयं शिवसायुज्य को प्राप्तकर शिव हो जाता है।

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में शिव को निष्कल्मष, आदिदेव, अन्तिम सत्ता, अक्षर, अपरिवर्तित रहनेवाला तथा परमपद आदि कहा गया है।

परमात्मा सदाशिवः आदिभूतः परः .....।
सदाशिव एव निष्कल्मष आद्यो देवोऽन्त्यमक्षरं व्याक्रियते।
परमं पदं ..... (त्रिपुरातापिन्युपनिषत् पहला उपनिषद्)

त्रिपुरोपनिषत् में शिव को समस्त जगत् अथवा लोकों का कर्त्ता अथवा विधाता, धारण करनेवाला तथा उनका विनाश करनेवाला कहा गया है। संपूर्ण जगत् उसी का स्वरूप है।

शर्वः सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति। (त्रिपुरोप. 15)

निरालम्बोपनिषत् में गुरुरूप शिव को सच्चिदानन्दमूर्ति, निष्प्रपंच, शान्त, आलम्बनरहित तथा तेजस्वरूप कहा गया है।

ॐ नमः शिवाय गुरुवे सच्चिदानन्दमूर्तये।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ।। (निरालम्बो. 1)

शुकरहस्योपनिषत् में शुकदेवजी कहते हैं कि देवों के आदिदेव, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्दरूप, करुणा के सागर, भूतों के स्वामी उमापति प्रसन्न हो जाइये।

देवादिदेव सर्वज्ञ सच्चिदानन्द लक्षण।
उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे।। (श्लोक 9)

नारदपरिव्राजकोपनिषत् में भगवान् शिव को कवि(ब्रह्मा), पुराणपुरुष, पुरुषोत्तम, सर्वेश्वर, सभी देवों का उपास्य, अनादि, जगत् का आदि, मध्य एवं अन्त, अनन्त, अव्यय, परात्पर, शाश्वत आदि-आदि कहा गया है।

कविं पुराणं पुरुषोत्तमोत्तमं सर्वेश्वरं सर्वदेवैरुपास्यम्।
अनादि मध्यान्तमनन्तमव्ययं शिवाच्युताम् .....।।
.....।
परात्परं यन्महतो महान्तं स्वरूपतेजोमयशाश्वतं शिवम्।। (नारदपरिव्रा. 9/17-18)

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् में कहा गया है कि जो कुछ भी हमारे चारों तरफ है उसे शिव ही जानना चाहिये। नित्य, शुद्ध, निरञ्जन, सर्वव्यापी तथा अद्वैतस्वरूप शिव ही नाना प्रकार के पिण्डों के रूप में भासता है अथवा प्रतिबिम्बित होता है।

सर्वमिदं शिव एव विजानीहि। किंतु नित्यः शुद्धो निरञ्जनो विभुरद्वयः शिव एकः स्वेनभासेदं सर्वं दृष्टवा तप्तायः पिण्डवदेकं भिन्नवदवभासते। (श्लोक 1)

आगे कहा गया है कि जीव और शिव में तात्त्विक भेद न होकर केवल अज्ञान आदि मलों का भेद है। अर्थात् विकारों से छूट जाने के बाद जीव स्वयं शिव(सायुज्य को प्राप्त) हो जाता है।

सविकारस्तथा जीवो निर्विकारस्तथा शिवः। ..... (श्लोक 13)

पंचब्रह्मोपनिषत् में भगवान् शिव को सच्चिदानन्द तथा मुमुक्षुओं के अन्वेषण का विषय कहा

गया है। यहाँ भाव यह है कि मुमुक्षुओं के परमलक्ष्य भगवान् शिव हैं जो स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं।

स शिवः सच्चिदानन्दः सोऽन्वेष्टव्यो मुमुक्षुभिः। (श्लोक 35)

शाण्डिल्योपनिषत् में भी दूसरे तथा तीसरे अध्याय में शिव को परब्रह्म स्वीकार किया गया है। एक, अक्षर, निष्क्रिय, सन्मात्र, परमब्रह्म शिव से किस प्रकार विश्व पैदा, स्थिर तथा लय को प्राप्त होता है? ऐसा प्रश्न पूछा गया है–

यदेकमक्षरं निष्क्रियं शिवं सन्मात्रं परंब्रह्म। तस्मात्कथमिदं विश्वं जायते कथं स्थीयते कथमस्मिंल्लीयते। (शाण्डिल्योपनिषत् अध्याय 3/1)

उपरोक्त उद्धरणों के अलावा भी सैकड़ों अन्य सन्दर्भ हम उपनिषदों में बिखरे पाते हैं जो भगवान् शिव को परब्रह्म सिद्ध करते हैं। यहाँपर हमने कुछ प्रचलित एवं प्रमुख उपनिषदों का ही उद्धरण दिया है।

उपनिषदों में भगवान् शिव के सगुण–साकाररूप की भी चर्चा है। उदाहरण के लिये पंचब्रह्मोपनिषत् में भगवान् शिव के पाँचों मुखों की विशेषताओं की चर्चा है। भस्मजाबालोपनिषत् में भगवान् शिव के साकार–विग्रह के ध्यान की चर्चा में उन्हें चन्द्रशेखर, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निरूपी नेत्रवाला तथा विभूति धारण करनेवाला कहा गया है। जिसके ध्यान से व्यक्ति पापों से मुक्तहोकर शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिव कहते हैं–

चन्द्रकिरीटं सोमसूर्याग्निनयनंभूतिभूषितविग्रहं शिवं मामेवमभिध्यायन्तो मुक्तकिल्बिषास्त्यक्ताबन्धामय्येव लीना भवन्ति। (भस्मजाबालो. अध्याय 2)

आगे भगवान् शिव ब्राह्मण के कर्त्तव्य को बताते हुए अपने स्वरूप के ध्यान की चर्चा करते हैं। उसमें वे अपने सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को एक साथ ही ध्यान के विषय के रूप में प्रतिपादित करते हैं। वे कहते हैं कि मुझे पार्वती के साथ वृषपर आरूढ़, कृष्णपिंगल रूपवाला, सुवर्णमय बाहु एवं रूपवाला, पशुपाश विमोचक, सहस्त्र आँख, सिर, पैर, बाहुवाला, विश्वात्मा, एक, अद्वैतस्वरूप, निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, अक्षर, अव्यय, हरि, हर तथा हिरण्यगर्भ के स्त्रष्टा, अप्रमेय, अनादि तथा अनंत के रूप में ध्याना चाहिये।

..... ध्यात्वा साम्बं मामेव वृषभारूढं हिरण्यबाहुं हिरण्यवर्णं हिरण्यरूपं पशुपाशविमोचकं पुरुषं कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपं सहस्त्राक्षं सहस्त्रशीर्षं सहस्त्रचरणं विश्वतोबाहुं विश्वात्मानमेकमद्वैतं निष्कलं निष्क्रियं शान्तं शिवमक्षरमव्ययं हरिहरहिरण्यगर्भस्त्रष्टा–रमप्रमेयमनाद्यन्तं .....। (भस्मजाबालोपनिषत् अध्याय 2)

शिव एक, नाम–रूप अनेक

शिवतत्त्व तो एक ही है–**'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** (छान्दोग्य उप. 6/2/1)। उस अद्वैत तत्त्व के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं–**"एकमेवसत्। नेह नानास्ति किंचन"** (वृहदारण्यक उप.

4/4/19)। परन्तु उस तत्त्व के नाम अनेक होते हैं।

ऋगवेद तथा अथर्ववेद में कहा है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋ. वे. 1/164/46 तथा अथर्ववेद 9/10/28)

इस मन्त्र में 'अग्नि' शब्द दो बार आया है। एक बार अग्नि देवता के लिये और दूसरी बार रुद्र के लिये। इसका भाव यह है कि जो एक रुद्र है उसे ही बहुत प्रकार से मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाशयुक्त, उदय अस्तरूप से गमन करनेवाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामों से पुकारते हैं। शिवसहस्रनाम में हम शिव की हजार नामों से वंदना करते हैं पर उसके केवल हजार नाम ही नहीं हैं। उसके अनन्त नाम विद्वानों ने कल्पित किये हैं।

नाम की तरह उस एक तत्त्व शिव के रूप भी अनेक होते हैं। ऋग्वेद में "**पुरुरूपः**" लिखकर इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। उपनिषद् में उदाहरण देकर समझाया गया है कि एक ही भगवान् अनेक रूपों में कैसे आ जाते हैं-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

जैसे कण-कण में व्याप्त अग्नि एक ही है, किन्तु अनेक रूपों में हमारे सामने प्रकट होती है, वैसे ही भगवान् शिव एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। लोक-कल्याण के लिये सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, ईशान आदि अनेक अवतार-रूपों में वे प्रकट हुए हैं(शिवपुराण, शतरुद्र संहिता, अध्याय 1)।

यहाँपर जिज्ञासा हो सकती है कि शिव एक ही हैं, तब वे अनेक नाम-रूपों को क्यों ग्रहण करते हैं। इसका उत्तर उपनिषदों में यह दिया गया है कि प्रयोजनवश भगवान् शिव अपनी अनेक मूर्तियाँ बना लेते हैं। उदाहरण के लिये रुद्रहृदयोपनिषद्(15) का उपरोक्त उद्धरण देखिये जहाँ कहा गया है कि-

प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा कृता (रुद्रहृ. उप.-15)

जिसका भाव यह है कि प्रयोजन के अनुसार रुद्र ने उपनी एक ही मूर्ति को तीन प्रकार से व्यवस्थित किया है(धर्म रुद्रस्वरूप, जगत् विष्णुस्वरूप और ज्ञान ब्रह्मास्वरूप)। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि रूद्रदेव का प्रयोजन क्या है? भगवान् का 'प्रयोजन' सांसारिक प्रयोजनों से नितान्त भिन्न होता है जिसकी बौद्धिक व्याख्या लीला के रूप में की जाती है। लीला ही भगवान् का प्रयोजन है। योगी अरविन्द की दृष्टि में लीला भगवान् के आनंद की अभिव्यक्ति मात्र है। जैसे हँसने की क्रिया हमारे

आनंद की अभिव्यक्ति है उसी प्रकार सृष्टिरूप क्रिया ब्रह्म के आनंद की अभिव्यक्ति है। कवि-लेखक, मूर्तिकार, चित्रकार एवं कलाकार जिस प्रकार अपनी-अपनी सर्जना के माध्यम से अपने आनंद के भावों को व्यक्त करते हैं उसी प्रकार शिव का आनंदातिरेक सृष्टिरूप सर्जना में प्रकट होता है। ब्रह्मसूत्र में बताया गया है कि लीला के अतिरिक्त इस सृष्टिरूपी विविधता का कोई प्रयोजन नहीं है-

'लोकवत् तु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र 2/1/33)

अर्थात्- वह एक तत्त्व जो सृष्टि के रूप में प्रकट होता है, उसका प्रयोजन एकमात्र 'लीला' है। प्रश्न उठाया जाता है कि ईश्वर तो आप्तकाम है अर्थात् उसकी सब इच्छायें पूर्ण रहती हैं, फिर वह खेल की कामना कैसे कर सकता है? ईश्वर को तो किसी वस्तु का अभाव नहीं है फिर वे कामना किसकी करेंगे? यह जिज्ञासा महात्मा विदुरजी को भी उठी थी फलस्वरूप उन्होंने मैत्रेयजी से पूछा था-

ब्रह्मन् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः।
लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः।।
क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषान्यतः।
स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदान्यतः।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण 3/7/2-3)

ईश्वर प्रेमस्वरूप हैं-**'तस्मात् प्रेमानन्दात्'** (सामरहस्योपनिषद्)। अतः ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति लीला में होती है। लीला को प्रेम का एक अभिन्न अंग माना जाता है। अतः प्रेमलीला की अभिव्यक्ति हेतु ही भगवान् अद्वैत से द्वैत स्वरूप को ग्रहण कर लेता है। सन्मय, चिन्मय और आनंदमय निर्गुण शिव स्वयं ही स्थावर एवं जंगम दोनों बन जाते हैं। उनका स्थूल से स्थूल रूप है ब्रह्माण्ड, जो क्रीड़ास्थली का काम देता है-

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्।।

(श्रीमद्भागवत 2/1/24)

अर्थात्- यह ब्रह्माण्ड जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य की समस्त वस्तुएँ दीख पड़ती हैं, भगवान् का स्थूल-से-स्थूल शरीर है।

प्राकृत होने के कारण प्रारंभ में यह ब्रह्माण्ड निर्जीव था। भगवान् ने इसमें प्रवेश कर इसे जीवित कर दिया-**'जीवो जीवेन जीवयत्'** (श्रीमद्भागवत)। फिर वे विराट-पुरुष के रूप में आये। उसके बाद दो पैरोंवाले और चार पैरोंवाले बहुत-से शरीर बनाये और अंशरूप से इनमें भी प्रविष्ट हो गये-

पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः।
पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत्.....।।

(वृहदारण्यक उप. 2/5/18)

इस प्रकार सृष्टि होजानेपर खेल(लीला) में भाग लेनेवालों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। इन प्राणियों के जो अनन्त शिर, अनन्त आँखें और अनन्त पैर हैं, ये सब उन्हीं के ब्रह्माण्ड-देह में हैं। इसी से ब्रह्म को **"सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्"** कहा गया है-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।। (श्वेताश्वतर उप. 3/14)

भगवान् शिव ने सब जगह आँखें, मुँह और पैर कर लिये-

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।

(श्वेत. उप. 3/3)

उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि वे अपने प्रेमियों को हजार-हजार नेत्रों से निरन्तर निहारा करें, उनके द्वारा अर्पित वस्तुओं का भोग लगा सकें, हजारों हाथों से उनका रक्षण कर सकें एवं उन्हें स्नेह से गले लगा सकें और जहाँ-कहीं बुलाया जाय, वहाँ तत्काल पहुँच सकें।

इस तरह भगवान् शिव क्रीडा-स्थली का निर्माणकर एवं जीवों को प्रकटकर इनके शरीर-रूपी नगर में तथा बाह्य-जगत् में बसकर लीला कर रहे हैं-

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः। (श्वेत. उ. 3/18)

अर्थात्- नौ दरवाजोंवाले मनुष्यशरीररूप नगर में अन्तर्यामीरूप से स्थित परमेश्वर ही इस बाह्य- जगत् में भी लीला कर रहे हैं।

भक्त अपनी रुचि के अनुसार भगवान् के नाम और रूप का वर्णन कर सकें, इसलिये वे अनन्त नामों और रूपों में आते हैं-

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।। (श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् 1/7)

अर्थात्- ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय तथा प्राकृत शरीर से रहित है फिर भी वह उपासकों के अभीष्ठ कार्य की सिद्धि के लिये नाना रूपों में प्रकट होता है।

वही विराट्-पुरुष के रूप में आता है, विष्णु, दुर्गा, गणेश और सूर्य के रूप में आता है-**"ब्रह्मण्येवं हि पञ्चधा"** (श्रीराम पू. उप. 1/10)। पंच देवों के रूप में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण व्यक्त एवं अव्यक्त के रूप में प्रभु शिव ही हैं।

उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम्।। (रुद्रहृदयोपनिषद् 10)

अर्थात्- स्थावर और जंगमस्वरूप सृष्टि उमा-महेश्वर रूप है। समस्त व्यक्त जगत् उमा का स्वरूप है और अव्यक्त जगत् महेश्वर का स्वरूप है।

जिस प्रकार समस्त सृष्टि के स्थावर-जंगम उमा-महेश्वर रूप हैं उसी प्रकार समस्त देव भी उन्हीं के रूप हैं। सृष्टिव्यापार के निमत्त भगवान् शिव स्वयं पहले तीन प्रमुख देवों-ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र-के

रूप में व्यक्त होते हैं। तदनन्तर ये तीनों देव सृष्टि – प्रक्रिया को संभालते रहते हैं। उपनिषदों में भी हमें शिव एवं विष्णु की अथवा तीनों देवों की एकता का स्पष्टरूप से प्रतिपादन प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ स्कन्दोपनिषत् में शिव एवं विष्णु को अभिन्न बताया गया है। वहाँ कहा गया है कि शिव विष्णुरूप हैं तथा विष्णु शिवरूप हैं। शिव के हृदय में विष्णु तथा विष्णु के हृदय में शिव विद्यमान हैं। जैसे शिव विष्णुमय हैं वैसे ही विष्णु शिवमय हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं है।

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।।
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरामुषि।। (स्कन्दोपनिषत् 8 – 9)

उपरोक्त उद्धरण से पहले कहा गया है कि वही महादेव है, वही हरि है, वही ज्योतियों की ज्योति तथा परमेश्वर है।

स एव हि महादेवः स एव हि महाहरिः।।
स एव ज्योतिषां ज्योतिः स एव परमेश्वरः। (स्कन्दोप. 4 – 5)

शाण्डिल्योपनिषत् में कहा गया है कि मायावी महेश्वर ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र तथा सभी देवों का रूप है।

..... स ब्रह्मा स विष्णु स रुद्रः स इन्द्रः स सर्वे देवाः .....।

(शाण्डिल्योप. 3/1)

यहाँपर सभी देवताओं की तात्त्विक एकता का संकेत किया गया है। इसी प्रकार के अनेक उद्धरण हमें अन्य उपनिषदों में भी प्राप्त होते हैं।

भुक्ति – मुक्तिदाता शिव

वेदों एवं उपनिषदों में भक्तों की भगवान् रुद्र से अपने आरोग्य, आयुवृद्धि, माता – पिता, पुत्र – कलत्र, मित्र – सेवक, सैनिक तथा पशु आदि की रक्षा के निमित्त प्रार्थनाएँ वर्णित है यथा –

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।
.....।।

(श्वे. उप. 3/5, 6 तथा यजुर्वे. 16/2, 3)

अजात इत्येवं कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते।[1]
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।। (श्वे. उप. 4/21)

1. किसी – किसी जगह पर 'प्रपद्यते' के स्थान पर 'प्रतिपद्यते' पाठ प्राप्त होता है। परन्तु इस पाठान्तर से भाव में कोई फर्क नहीं पड़ता।

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे।।

(श्वेता. उप. 4/22; य. वेद 16/16 तथा ऋ. वे. 1/114/8)

उपरोक्त उद्धरणों से पता लगता है कि भगवान् शिव भक्त को समस्त संकटों–भौतिक, आधिभौतिक या आध्यात्मिक–से मुक्ति दिलाते हैं। भगवान् न केवल भौतिक अपितु परम आध्यात्मिक –लाभ, मुक्ति, के भी दाता हैं। भगवान् रुद्र अपने भक्तों पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं इसी कारण उन्हें आशुतोष भी कहा जाता है। अर्थवशिरस् उपनिषद् में रुद्र किसे कहते हैं? प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि जो उपासकों के समक्ष अपना रूप शीघ्र प्रकटकर दे उसे रुद्र कहते हैं(देखिये मंत्र 4)। अतः बुद्धिमान् उपासक इस रहस्य को जानकर अपने कष्टों के निवारण हेतु भगवान् शिव की शरण लेता है।

'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति–जनक एक अर्थ विद्वानों ने यह बताया है कि जो दुःखों को नष्टकर दे। न केवल भौतिक अपितु आध्यात्मिक कष्टों को भी जो दूर कर दे उसे रुद्र कहते हैं। रुद्र के अनेक नामों जैसे शिव, शंकर, महादेव, ईशान, कामारि, पशुपति, महेश्वर आदि पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि एकमात्र भगवान् शिव का आश्रय ही सर्वोत्तम है। कारण कि वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, भौतिक एवं आध्यात्मिक सभी दुःखों को दूर करनेवाले तथा सुखों को प्रदान करनेवाले हैं।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है कि–

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।। (4/14)

अर्थात्– जो परब्रह्म सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं(अर्थात् जो बिना उनकी कृपा के जाने नहीं जाते), जो सबकी हृदयगुहा के भीतर स्थित हैं(अर्थात् जो हमारे अत्यन्त समीप हैं), जो अखिल विश्व की रचना करते हैं तथा स्वयं विश्वरूप होकर अनेक रूप धारण किये हुए हैं–यही नहीं, जो(निराकाररूप से) समस्त जगत् को सब ओर से घेरे रहते हैं, उन(सर्वोपरि एक–अद्वितीय कल्याणरूप) महेश्वर को जानकर मनुष्य सदा रहनेवाली(असीम) शान्ति(अर्थात् मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है।

महेश्वर की शरण लेने से मनुष्य को मोक्ष सुगमता से प्राप्त हो जाता है। जाबालोपनिषद् में रुद्र को तारकबह्म कहा गया है(जाबालोपनिषद्–1)। ज्ञानी को देहत्याग करते समय भगवान् रुद्र ॐकार मन्त्र का उपदेश देते हैं ताकि वह मुक्त हो जाय। अथर्वशिरस् उपनिषद्(2/3) में(जैसा ऊपर कहा जा चुका है) ॐकार को रुद्र का ही स्वरूप बताया गया है। अतः ज्ञानी को भगवान् रुद्र स्वयं ही मुत्यु के समय अपने स्वरूप का ज्ञान प्रदान करते हैं।

रुद्रहृदयोपनिषद् में भी यह बताया गया है कि श्रीरुद्र के जप से समस्त देवताओं का कीर्तन हो जाता है तथा व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है(देखिये उपरोक्त उद्धरण– रुद्रहृ. उप. 17)। नारायण(1/5) तथा जाबाल उपनिषदों में पापमुक्ति हेतु रुद्रगायत्री का उल्लेख है। रुद्र–गायत्री इस प्रकार है–

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

(नारायणोपनिषद् 1/5)

नारायणोपनिषद्(2/56), य. वेद(3/60) एवं ऋ. वेद(7/59/12) में मृत्यु को जीतने वाले मृत्युञ्जय मंत्र का उल्लेख है। इस मंत्र में भगवान् शिव से मुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। इस मन्त्र की विषद व्याख्या शिवपुराण की रुद्रसंहिता के सतीखण्ड के अध्याय 38 में की गयी है।

जाबाल एवं रामोत्तरतापिनि उपनिषदों में बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य से पूछा–प्रभो जिस तीर्थ के सामने कुरुक्षेत्र भी छोटा लगे, जो देवताओं के लिये भी देवपूजन का स्थान हो, जो समस्त प्राणियों के लिये परमात्मा प्राप्ति का निकेतन हो, वह कौन है? यह प्रश्न सुनकर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया–निश्चय ही अविमुक्त तीर्थ(काशी) ही प्रधान कुरुक्षेत्र(सत्कर्म का स्थान) है। वही देवताओं के लिये भी देव–पूजा का स्थान है; वही समस्त प्राणियों के लिये परमात्मप्राप्ति का निकेतन है। अतः जहाँ–कहीं भी जायँ, उस अविमुक्त तीर्थ को ही प्रधान कुरुक्षेत्र मानें। वही सम्पूर्ण प्राणियों के लिये परब्रह्मप्राप्ति का स्थान है। यहीं जीव के प्राण निकलते समय भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं जिससे वह अमृतमय होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसीलिये अविमुक्त (काशी) का ही सेवन करें, उसका कभी परित्याग न करें।

.....अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म
व्याचष्टे येन सावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति.....।

(जाबालोपनिषद् 1 तथा रामोत्तरतापिन्युपनिषद् 1)

उपरोक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि उपनिषदों में काशी को तीर्थराज के रूप में स्वीकृति दी गयी है तथा इसके सेवन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। हिन्दू–समाज की वर्त्तमान परम्परा के अनुसार भी मरणासन्न व्यक्ति को या अन्तिम समय में काशीवास करना चाहिये। यही कारण है कि वहाँपर आज भी कई ऐसे आवास–स्थान धर्मार्थ बनाये गये मिलते हैं जहाँ केवल मरणासन्न व्यक्ति रहते हैं और वहाँपर सतत कीर्तन–भजन चलता रहता है।

वृहज्जाबाल(7वाँ ब्राह्मण), रुद्राक्षजाबाल, भस्मजाबाल(प्रथम अध्याय) एवं जाबाल्युपनिषद् में शिवमाहात्म्य एवं शिवस्मरणपूर्वक भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करने की विधि एवं उनके फलों को विस्तार से बताया गया है। भस्म एवं रुद्राक्ष का विधिपूर्वक धारण शिवसायुज्य को प्राप्त करा सकता है।

जाबाल्युपनिषद् में यह पूछे जानेपर कि पशुपति का ज्ञान किस उपाय से होता है? यह कहा गया है कि "विभूतिधारण करने से।" उसके धारण करने की विधि क्या है? तथा उसे कहाँ-कहाँ धारण करना चाहिये? इसके उत्तर में कहा गया है कि **'सद्योजातादि[1] .....'** पाँच ब्रह्मसंज्ञक मंत्रों से भस्म संग्रह करें। **'अग्निरितिभस्म[2] .....'** इस मन्त्र से भस्म को अभिमंत्रित करें, **'मा नस्तोके[3].....'** इस मन्त्र से उठाकर जल से मलें, **'त्र्यायुषम्[4] .....'** इत्यादि मंत्र से मस्तक, ललाट, वक्षस्थल और कंधे पर त्रिपुण्ड्र करें। **'त्र्यायुषम्'** तथा **'त्र्यम्बकम्[5] .....** इन दोनों मन्त्रों को तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखायें खींचें। यह **"शाम्भव"** व्रत है। मुमुक्षु आवागमन से बचने के लिये इसका सम्यक आचरण करें। त्रिपुण्ड्र-धारण की तीन रेखायें ललाटभर में चक्षु और भ्रुवों के मध्यतक होती हैं। पुनः इन रेखाओं के रहस्य को विस्तार से समझाने के बाद कहा गया है कि जो इन रहस्यों को समझकर भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह आवागमन से मुक्त होजाता है। शिवपुराण में भी भस्म-धारण करने की इसी विधि का अनुमोदन किया गया है(देखिये शि. पुराण, विद्येश्वरसंहिता, अध्याय 13)।

---

1. महानारायणोपनिषद् अथवा नारायणोपनिषद् से ये मन्त्र लिये गये हैं-

(क) **सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवेनातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः।।**
(कहीं-कहीं पर **'भजस्व'** की जगह **'भवस्य'** पाठ मिलता है)

(ख) **वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो(बलाय नमो) बल प्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।।**
(कहीं-कहीं पर **बलविकरणाय नमो** के बाद **'बलाय नमो'** फिर **बल प्रमथनाय नमः** पाठ मिलता है तथा **'मनोन्मनाय'** की जगह **'मनोन्मथाय'** पाठ मिलता है।)

(ग) **अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।**
(कहीं-कहीं पर **घोरतरेभ्यः** के बाद **सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो** पाठ मिलता है)

(घ) **तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।**

(ड.) **ईशानः सर्वविद्यानाम् ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।।**
उपरोक्त पाँचों मन्त्रों के प्रारम्भ में 'ॐ' को जोड़ लेना चाहिये।(महानारायणोपनिषद् खण्ड 17/1-5)

2. **ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म देवा भस्म ऋषयो भस्म । सर्वं ह वा एतदिदं भस्म।।** (भस्मजाबाल उप. अध्याय 1)

3. **मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मानो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे।।** (य. वेद 16/16)
ऋ. वेद (1/114/8) में पहली पंक्ति में 'आयुषि' की जगह 'आयौ' तथा दूसरी में 'भामिनो' की जगह 'भामितो' पाठ मिलता है।

4. **त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।**
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।। (युजुर्वेद 3/62)

5. **त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।। (यजु. वे. 3/60 तथा ऋ. वे. 7/59/12)

गर्भोपनिषद् में बताया गया है कि गर्भस्थजीव दुःख-निवृत्ति हेतु भगवान् शिव से प्रार्थना करता है। जब जीव माता के गर्भ में आता है और नवें मास में अंग-प्रत्यंग पूर्ण हो जाते हैं, ज्ञान-सामग्री (इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि) के उदय होने से इसको पूर्व-जन्मों के किये शुभाशुभ कर्मों का स्मरण आता है, तब वह पश्चात्ताप करता है कि-

मैंने सहस्त्रों पूर्व-जन्मों को देखा, उनमें नाना प्रकार के भोजन किये, नाना प्रकार के नाना योनियों के स्तनों का पान किया। मैं बारंबार पैदा हुआ, मृत्यु को प्राप्त हुआ। अपने परिवारवालों के लिये जो मैंने शुभाशुभ कर्म किये, उनको सोचकर मैं आज यहाँ अकेला दग्ध हो रहा हूँ .....। यदि इस योनि से छूट जाऊँगा-इस गर्भ के बाहर निकल गया तो अशुभ कर्मों का नाश करनेवाले तथा मुक्तिरूप फल को प्रदान करनेवाले महेश्वर के चरणों का आश्रय लूँगा .....।

पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।

.....

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।

अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्।। (गर्भोपनिषद् 4)

उपरोक्त उद्धरण में शिव को अशुभ को दूर करनेवाला एवं मुक्ति प्रदान करनेवाला माना गया है। अनेक उपनिषदों में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है, परन्तु उन सबका उल्लेख यहाँ संभव नहीं है।

शिवोपासना

पशुविलक्षण परात्पर परब्रह्म परमेश्वर का नाम शिव है। पाश-युक्त पशुतुल्य अशिव जीवों को पाशमुक्त करनेवाली उपासना शिवोपासना कहलाती है।

अशिवाःपाशसंयुक्ताः पशवः सर्वचेतनाः।

यस्माद् विलक्षणास्तेभ्यस्तस्मादीशः शिवः स्मृतः।। (शिवोपानिषद् 1/10)

त्रिगुण की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृतिसहित उसके परिणाम बुद्धि (महत्), अहं, शब्द-स्पर्शादि पंच तन्मात्राएँ, मन, श्रोत्र-वाणी आदि दस इन्द्रियाँ और आकाशादि पंचभूत-ये चौबीस तत्त्व 'पाश' कहे गये हैं। सच्चिदानन्द होते हुए भी अनादि अज्ञान के कारण इनमें निबद्ध जीव शैवागमों में 'पशु' माना गया है।

त्रिगुणमयी प्रकृति जबतक बन्धन का कारण बनी रहती है, तबतक उसकी अज्ञान (अविद्या) संज्ञा रहती है। शिवोपनिषद् के अनुसार अज्ञान 25 वाँ तत्त्व है। उससे तादात्म्य प्राप्त अज्ञ जीव छब्बीसवाँ तत्त्व है। नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सर्वेश्वर जीव सत्ताईसवाँ शिवतत्त्व है। शिवतत्त्व के विचार से तत्त्वज्ञान एवं तत्त्वज्ञान से मुक्ति संभव है। (शिवोपनिषद् 1/11-16)

यद्यपि उपनिषदों को ज्ञान-काण्ड कहा जाता है तथापि उनमें मोक्षप्राप्ति के सभी प्रकार के साधनों-ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग आदि-के वर्णन संक्षिप्त अथवा विस्तृतरूप में प्राप्त होते हैं। प्राचीन उपनिषदों में मुख्यतः ज्ञान एवं योग को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की शिवोपासना हमें उपनिषदों में प्राप्त होती है।

शिव उपासना के सन्दर्भ में दक्षिणामूर्ति उपनिषद् में कहा गया है -

सर्गादिकाले भगवान् विरञ्चिरूपास्यैनं सर्गसामर्थ्यमाप्य।
तुतोष चित्ते वाञ्छितार्थंश्च लब्ध्वा धन्यः सोपास्योपासको भवति धाता।।

(दक्षिणामूर्ति उप. 20)

अर्थात्- सृष्टि के आदि में भगवान् ब्रह्मा शिव की उपासना करने से सामर्थ्य प्राप्तकर और मनोभिलषित अर्थ को पाकर संतुष्ट होते हैं। इन उपास्य(शिव) का उपासक धन्य है क्योंकि वह भी धाता(सबका धारण-पोषण करनेवाला) हो जाता है।

बहुत से लोग शिव को तामसी देव मानकर उनकी उपासना में दोष समझते हैं। वास्तव में उनका यह भ्रम है, जो बाह्य दृष्टिवाले साम्प्रदायिक आग्रही लोगों द्वारा पैदा किया हुआ लगता है। जिस शिव का गुणगान वेदों, उपनिषदों एवं वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में भी गाया गया है (जिसकी चर्चा आगे के अध्यायों में की जायेगी।) उन्हें तामसी बतलाना अपने ही तमोगुण का परिचय देना है। परात्पर महाशिव तो सर्वथा गुणातीत हैं(जैसा पहले, शिवोपनिषद् के संदर्भ में बताया गया है), वहाँ गुणों की क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत, नित्य, दिव्य, साकार चैतन्य रसविग्रह-स्वरूप में क्रिया है, उसमें भी गुणों का खेल नहीं है। भगवान् की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है और जिन ब्रह्मादि त्रिदेव-मूर्तियों में सत्त्व, रज एवं तम की लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणों की क्रिया के अनुसार नहीं है। भिन्न-भिन्न क्रियाओं के कारण उनपर सत्त्व, रज, तम का आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह गुणातीत ही हैं।[1]

कुछ लोग भगवान् शंकर को परमेश्वर मानते हैं परन्तु मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं और प्रायः लौकिक कामनाओं की सिद्धि के लिये ही उनकी भक्ति करते हैं। यह मान्यता भी उपनिषदों की मान्यता के विपरीत है। इसमें सन्देह नहीं है कि परम उदार आशुतोष, भगवान् शिव में दया की लीला का विशेष प्रकाश होने के कारण वे भक्तों की मनमानी वस्तु देने के लिये सदा ही तैयार रहते हैं परन्तु इन्हें मुक्तिदाता न समझना ठीक नहीं है। जब भगवान् शिव के

1. भागवत महापुराण में कहा गया है कि प्रभो(शिव) अपनी गुणमयी शक्ति से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के लिये आप अनन्त, एकरस होनेपर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नाम धारण कर लेते हैं(भागवत महापुराण 8/7/23)। उपनिषदों में भी त्रिदेवों की एकता स्वीकार करते हुए शिव को परमब्रह्म माना गया है। उपनिषदों के उद्धरण ऊपर दिये जा चुके हैं।

स्वरूप का तत्त्वज्ञान ही मुक्ति का नामान्तर है तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना सिवा भ्रम के और क्या हो सकता है? इस प्रसंग में श्वेताश्वतर उपनिषद् के उपरोक्त मन्त्र (4/14) पर विचार करें।

भगवान् शंकर को भोलानाथ मानकर बहुत से लोग उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी, नशेबाज और बावला समझकर उनका उपहास करते हैं। विनोद से (या मखौल में) भक्त सब कुछ कह सकते हैं और भक्त का आरोप भगवान् स्वीकार भी कर लेते हैं। परन्तु जो सचमुच में शिव को पागल, श्मशानवासी, औघड़, नशेबाज आदि समझते हैं, वे गहरी भूल में हैं। शंकर का श्मशान-निवास, उनकी उन्मत्तता, उनका विषपान, उनका सर्वांगीपन आदि बहुत गहरे रहस्य को लिये हुए हैं, जिसे शिव की कृपा से शिवभक्त ही समझ सकते हैं। वेदों व उपनिषदों में इसके गहन आध्यात्मिक अर्थों की ओर संकेत प्राप्त होते हैं। जैसे व्यभिचारप्रिय लोग भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला को व्यभिचार का रूप देकर प्रकारान्तर से अपने व्यभिचारदोष का समर्थन करते हैं, इसी प्रकार सदाचारहीन, अवैदिक क्रियाओं में रत नशेबाज मनुष्य शिव के अनुकरण का ढोंग रचकर अपने दोषों का समर्थन करना चाहता है। वस्तुतः उपनिषदों के अनुसार शिवभक्त को सदाचारपरायण रहकर गाँजा, भाँग, नशा, अपवित्र वस्तुओं के सेवन एवं अपवित्र आचरण आदि से बचते रहना चाहिये।[1]

भगवान् शिव को परात्पर मानकर उपासना करनेवालों के लिये तो वे परब्रह्म हैं। अन्यान्य भगवत्स्वरूपों के उपासको के लिये भगवान् शिव उनके लिये मार्गदर्शक परमगुरु हैं क्योंकि उपनिषदों एवं पुराणों में उन्हें सभी विद्याओं का प्रवर्तक माना गया है- "**ईशानः सर्व विद्यानाम् .....।**[2] भगवान् विष्णु के भक्त के लिये भी सद्गुरुरूप से शिव की उपासना आवश्यक है। बिना शिवभक्ति के अन्य देवों की भक्ति संभव नहीं। वैष्णव ग्रन्थों में इसका यथेष्ट उल्लेख है। उदाहरण के लिये रामचरितमानस में कहा है-

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। (उत्तरकाण्ड 45)
होई अकाम जो छल तजि सेइहि।
भगति मोरि तेहि संकर देइहि।। (लंकाकाण्ड-2/2)
सिव सेवा कर फल सुत सोई।
अबिरल भगति राम पद होई।। (उत्तरकाण्ड 105(ख)/1)

1. भागवत (जो वैष्णव पुराण है) में भगवान् शिव के प्रति कहा गया है कि-जीवनमुक्त आत्माराम पुरुष अपने हृदय में आपके युगल चरणों का ध्यान करते रहते हैं तथा आप स्वयं भी निरन्तर ज्ञान और तपस्या में ही लीन रहते हैं। फिर भी सती के साथ रहते देखकर जो आपको आसक्त एवं श्मसानवासी होने के कारण उग्र अथवा निष्ठुर बतलाते हैं-वे मूर्ख आपकी लीलाओं का रहस्य भला क्या जानें? उनका वैसा कहना निर्लज्जता से भरा है। (भागवत महापु. 8/7/33)।

2. महानारायणोपनिषद् (17/5) तथा श्रीमद्भागवत् (12/10/8)।

पुनः शाक्त लोग शिव के बिना शक्ति की पूजा कैसे कर सकते हैं? गाणपत्य लोग गणेश की पूजा करें और उनके पिता शिव की न करें, यह शिष्ट मर्यादा नहीं हो सकती। सूर्य भगवान् शिव के तेजोलिंग के ही नामान्तर हैं। अतः सूर्योपासक भी शिवोपासना से अलग नहीं रह सकते। योगियों के लिये तो परम योगीश्वर शिव की आराधना की आवश्यकता है ही। ज्ञान-मार्गियों के लिये शिव की प्राप्ति ही परम कल्याणदायी है। न्याय-वैशेषिक दर्शन भी शिवविद्या के ही प्रचारक हैं। पुनः तन्त्र तो मुख्यतः शिवोपासना के लिये ही बना है। ऐसी स्थिति में जिस किसी भी दृष्टि से शिव को परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, जगद्गुरु, उत्पादक, संहारक-कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबके लिये अपेक्षित है। वास्तव में कैवल्य उपनिषद् में कहा गया है कि -वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर है, वही विष्णु है .....। जो कुछ हो चुका और जो होने वाला है वह सब वही है। उस सनातन तत्त्व(शिव) को जानकर प्राणी मुत्यु के परे चला जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है।[1](कैवल्योपनिषद 1/8-9)

पुनः रुद्रहृदयोपनिषद्(2-16) में कहा गया है कि रुद्र को जपने से समस्त देवों का कीर्तन हो जाता है क्योंकि रुद्रदेव ही त्रिदेवों के रूप में अपने को प्रकट करते हैं।

आध्यात्मज्ञान में गुरु के महत्त्व को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। उपनिषदों में भी गुरु-भक्ति की बात कही गयी है। वेदान्तज्ञान को गुरु द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिये क्योंकि इस ज्ञान से ही मुक्ति संभव है। यहाँ वेदान्तज्ञान का तात्पर्य है शास्त्रों में वर्णित मोक्षमार्ग का उपदेश।
श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है-

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः।।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।। (श्वेताश्वतर उप. 6/22, 23)

अभिप्राय यह है कि-यह परम रहस्यमय ज्ञान(आध्यात्मविद्या) पूर्वकल्प में भी वेद के अन्तिम भाग-उपनिषदों में भलीभाँति वर्णित हुआ था। भाव यह कि इस ज्ञान की परम्परा कल्प-कल्पान्तर से चली आ रही है, यह कोई नयी बात नहीं है। इसका उपदेश किसे दिया जाय किसे नहीं, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि "जिसका अन्तःकरण वासनाओं से शान्त न हो गया हो ऐसे मनुष्य को

1. भागवत में कहा गया है कि सारे जगत् को बाँधने और मुक्त करने में एकमात्र आप(शिव) ही समर्थ हैं। इसीलिये विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं क्योंकि आप शरणागत की पीड़ा नष्ट करनेवाले एवं जगद्गुरु हैं।

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम्।। (भागवत महापु. 8/7/22)

इस रहस्य का उपदेश नहीं देना चाहिये तथा जो अपना पुत्र अथवा शिष्य न हो, उसे भी नहीं देना चाहिये।" भाव यह है कि या तो जो सर्वथा शान्तचित्त हो ऐसे अधिकारी को देना चाहिये अथवा जो पुत्र या शिष्य हो, उसे देना चाहिये; क्योंकि पुत्र और शिष्य को अधिकारी बनाना पिता और गुरु का ही काम है। जिस साधक की परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति होती है और उसी प्रकार अपने गुरु में भी होती है, उस महात्मा–पुरुष के हृदय में ही ब्रह्म–विद्या संबंधी बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। अत: जिज्ञासु को पूर्ण श्रद्धा(गुरु तथा भगवान् में) रखनी चाहिये तभी ब्रह्मज्ञान हृदय में प्रकट होगा।

उपनिषदों में ज्ञानयोग के सन्दर्भ अनेक जगहों पर हैं। उदाहरणार्थ श्वेताश्वतर उपनिषद् में क्षर और अक्षरतत्त्व के ज्ञान से व्यक्ति माया के बन्धनों से छूट जाता है– "प्रकृति तो क्षर है और इसको भोगनेवाला अक्षरतत्त्व है। इन क्षर और अक्षर दोनों तत्त्वों पर परमदेव परमेश्वर शासन करते हैं, वे ही जानने योग्य हैं। उन्हें तत्त्व से जानना चाहिये–इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उन परमदेव परमात्मा का निरन्तर ध्यान करने से, उन्हीं में रात–दिन लगे रहने से और उन्हीं में तन्मय हो जाने से अन्त में उन्हीं को पा लिया जाता है। फिर इससे सम्पूर्ण माया की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है"(1/10)।

आगे कहा है–

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
..... केवल आप्तकामः।। (श्वेत. उ. 1/11)

अर्थात्– उस परमेदव का निरन्तर ध्यान करने से उस प्रकाशमय परमात्मा का ज्ञान हो जाता है तथा उसको जान लेनेपर समस्त बन्धनों का नाश हो जाता है क्योंकि क्लेशों का नाश हो जाने के कारण जन्म–मृत्यु का सर्वथा अभाव हो जाता है। अत: वह शरीर का नाश होनेपर तीसरे लोक(स्वर्ग) तक के समस्त ऐश्वर्यों का त्याग करके सर्वथा विशुद्ध पूर्णकाम हो जाता है।

आगे पुन: कहा है –

एतज् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।। (श्वेता. उप. 1/12)

भावार्थ यह है कि परब्रह्म अपने ही भीतर–हृदय में अन्तर्यामीरूप से स्थित है। इसको जानने के लिये कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं को सदा जानने की चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि इनसे बढ़कर जाननेयोग्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इन एक को जानने से ही सबका ज्ञान हो जाता है। मनुष्य भोक्ता(जीवात्मा), भोग्य(जड़वर्ग) और इन दोनों का प्रेरक ईश्वर को जानकर सब

कुछ जान लेता है। जिनके ये तीन भेद बताये गये हैं वे ही समग्र ब्रह्म हैं अर्थात् जड़ प्रकृति, चेतन आत्मा और उन दोनों का आधार–ये तीनों ब्रह्म के ही रूप हैं।

ज्ञानमार्गी साधक ॐकार की साधना द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। कहा गया है कि अग्नि को प्रकट करने के लिये जैसे दो अरणियों का मन्थन किया जाता है, उसी प्रकार अपने शरीर में परमपुरुष परमात्मा(शिव) को प्राप्त करने के लिये शरीर को तो नीचे की अरणि बनाना चाहिये और ॐकार को ऊपर की अरणि। अर्थात् शरीर को नीचे की अरणि की भाँति समभाव से निश्चल करके ऊपर की अरणि की भाँति ॐकार का वाणीद्वारा जप और मन से उसके अर्थस्वरूप परमात्मा(शिव) का निरंतर चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार इस ध्यानरूप मन्थन के अभ्यास से साधक को काष्ठ में छिपी हुई अग्नि की भाँति अपने हृदय में छिपे हुए परमेश्वर को देख लेना चाहिये।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्।। (श्वेता. उप. 1/14)

प्रश्नोपनिषद्(5/5–6) में ॐकार की त्रिमात्रायुक्त उपासना करने से परमपुरुष की प्राप्ति होने का उल्लेख है। माण्डूक्योपनिषद्(12) में कहा गया है कि ॐकार के निराकारस्वरूप की परब्रह्म परमात्मा के निर्गुण–निराकार निर्विशेषरूप के साथ समानता है। जो मनुष्य इस प्रकार ॐकार और परब्रह्म की अर्थात् नाम और नामी की एकता के रहस्य को समझकर परब्रह्म को पाने के लिये उनके नाम का(ॐ)–जप अवलम्बन लेकर तत्परता से साधन करता है तो वह ब्रह्म(अर्थात् शिव) को प्राप्त कर लेता है। ओंकार का महत्त्व तैत्तिरीयोपनिषद्(1/8) में बड़े विस्तार से बताया गया है। ज्ञान–योग के साधन का श्वेताश्वतर उप.(6/6) में संकेत किया गया है। कठोपनिषद्(1/2/15–17) में बताया गया है कि नामरहित होनेपर भी परमात्मा अनेक नामों से पुकारे जाते हैं। उनके सब नामों में 'ॐ' सर्वश्रेष्ठ माना गया है। नाम और नामी को अभिन्न मानकर प्रणव का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ॐकार ही परब्रह्म की प्राप्ति के लिये सब प्रकार के आलम्बनों से श्रेष्ठ है। इस नाम की शरण हो जाना ही उसकी प्राप्ति का अमोघ साधन है।

एतदालम्बनम् श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।। (कठोप. 1/2/17)

श्वेताश्वतर उपनि.(6/4) में कर्मयोग का संकेत किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जो कर्मयोगी सत्त्व, रज और तम–इन तीनों गुणों से व्याप्त अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थिति के अनुकूल कर्त्तव्यकर्मों का आरंभ करके उनको और अपने सब प्रकार के अहंता, ममता, आसक्ति आदि भावों को उन परब्रह्म परमेश्वर में लगा देता है, उनके समर्पण कर देता है तो उस समर्पण से उन कर्मों के साथ साधक का संबंध न रहने के कारण वे उसे फल नहीं देते । इस प्रकार उनका अभाव हो जाने से पहले किये हुए संचित कर्म–संस्कारों का भी सर्वथा नाश हो जाता है। इस प्रकार कर्मों का नाश

हो जाने से वह तुरंत परमात्मा को (अर्थात् शिव को) प्राप्त हो जाता है।

कठोपनिषद् (2/3/10 – 11) में कहा गया है कि योगधारणा द्वारा मन एवं इन्द्रियों को रोककर परमात्मा (शिव) को प्राप्त किया जा सकता है। योगाभ्यास करते – करते मन के सहित पाँचों इन्द्रियाँ जब स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी एक परमात्मा के स्वरूप में इस प्रकार स्थिर हो जाती है जिससे उसको परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, उस स्थिति को योगीगण परमगति बतलाते हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का ही नाम योग है – ऐसा माना जाता है; क्योंकि उस समय साधक विषय – दर्शनरूप सब प्रकार के प्रमाद से सर्वथा रहित हो जाता है। परन्तु यह योग उदय और अस्त होनेवाला है; अत: परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छावाले साधक को निरन्तर योगयुक्त रहने का अभ्यास करते रहना चाहिये।

.....॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ (कठ. उप. 2/3/10 – 11)

श्वेताश्वर उप. (2/6 – 15) में ध्यानयोग का सविस्तार वर्णन है। वहाँ बताया गया है कि ध्यानयोगी सिर, गले और छाती को ऊँचा उठाये रक्खे, अर्थात् शरीर को सीधा और स्थिर रक्खे। फिर ॐकार का जप और उसके वाच्य परमात्मा (शिव) का ध्यान करे। योगसाधक को यथायोग्य आहार – विहार करना चाहिये। फिर योगशास्त्र की विधि के अनुसार प्राणायाम करते – करते जब प्राण अत्यन्त सूक्ष्म हो जाय, तब नासिका द्वारा उसे बाहर निकाल दे। इसके बाद जैसे दुष्ट घोड़ों से जुते हुए रथ को अच्छा सारथी बड़ी सावधानी से चलाकर अपने गन्तव्य स्थानपर ले जाता है उसी प्रकार साधक सावधानी के साथ अपने मन को वश में रक्खे। ध्यान लगाने के लिये ऐसी भूमि का चुनाव हो जो पवित्र हो तथा ऊँची नीची न हो। जहाँ कंकड़ – रेत न हो, अग्नि या धूप भी न हो, जहाँ विक्षेप पैदा करनेवाला शब्द न होता हो, यथावश्यक जल प्राप्त हो सके, जहाँ शरीर – रक्षा के लिये उपयुक्त आश्रय हो, जहाँ का दृश्य पीड़ा पहुंचानेवाला भयानक न हो, ऐसे गुफा आदि वायुशून्य एकान्त में आसन लगाकर अपने मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास करना चाहिये।

संक्षेप में श्वेताश्वतर उप. में आहार – विहार, आसन, प्राणायाम, ध्यान, सिद्धि आदि योगांगों का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन किया गया है। कैवल्योपनिषद् (7) में कहा गया है कि त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव अर्थात् परात्पर ब्रह्म को – जो सब भूतों का मूल कारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्या से परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यान के द्वारा प्राप्त करते हैं। यहाँपर योग के प्रमुख अंग ध्यान का उल्लेख किया गया है जिसके द्वारा ईश्वर प्राप्त हो सकता है।

जाबालदर्शनोपनिषद् में योग के सभी अंगों का सविस्तार वर्णन है। पातंजल योग – दर्शन के अनुसार योग के यम (पाँच), नियम (पाँच), आसन (अनेकों), प्राणायाम (अनेकों), प्रत्याहार, धारणा,

ध्यान और समाधि(अनेकों)-ये आठ अंग हैं। इन सभी अंगों एवं उपांगों का बड़े स्पष्टरूप से जाबालदर्शनोपनिषद् में विवेचन किया गया है। इस उपनिषद् में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव(सरलता), क्षमा, घृति, परिमित आहार और बाहर-भीतर की पवित्रता ये दस यम माने गये हैं।

तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धान्तश्रवण, लज्जा, मति, जप और व्रत ये दस नियम कहे गये हैं। इसके अलावा नौ प्रकार के आसनों, प्राणायाम की विधियों, प्रत्याहार एवं धारणा के स्वरूप एवं प्रकार, दो प्रकार के ध्यान तथा सामाधि का बड़ा ही खुलासा वर्णन हम इस उपनिषद् में पाते हैं।

आत्मतीर्थ[1], जिसमें ज्ञानी और योगी स्नान करते हैं, की महिमा के संदर्भ में जाबालदर्शनोपनिषद् में कहा गया है कि- "अपने शरीर में मस्तक के स्थानपर श्रीशैल नामक तीर्थ है। ललाट में केदारतीर्थ है। (दत्तात्रेयजी अपने शिष्य से कहते हैं कि)हे महाप्राज्ञ! नासिका और दोनों भौहों के मध्य में काशीपुरी है(अर्थात् आज्ञाचक्र, जिसपर ध्यान लगाया जाता है, काशीपुरी है) ..... हृदय के मध्य भाग में चिदम्बरतीर्थ है। मूलाधार-स्थान में कमलालय तीर्थ है। जो इस आत्मतीर्थ(अपने भीतर रहनेवाले) का परित्याग करके बाहर के तीर्थों में भटकता रहता है, वह हाथ में रक्खे हुए बहुमूल्य रत्न को त्यागकर काँच खोजता फिरता है। भावनामय तीर्थ ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं। .....योगी पुरुष अपने आत्मतीर्थ में अधिक विश्वास और श्रद्धा रखने के कारण जल से भरे तीर्थों और काष्ठ आदि से निर्मित देवप्रतिमाओं की शरण नहीं लेते.....। शरीर के भीतर रहनेवाला दूषित चित्त बाह्य तीर्थों में गोते लगानेमात्र से शुद्ध नहीं होता.....। अपने भीतर होनेवाले जो विषुवयोग, उत्तरायण-दक्षिणायन काल और सूर्य-चन्द्रमा के ग्रहण हैं, उनमें नासिका और भौहों के बीच में स्थित वाराणसी आदि तीर्थों में भावना द्वारा स्नान करके मनुष्य शुद्ध हो सकता है। मुनिश्रेष्ठ! ज्ञानयोग में तत्पर रहनेवाले महात्माओं का चरणोदक अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये उत्तम तीर्थ है।" (जाबालदर्शनोप. 4/48-56, कल्याण, उपनिषद्-अंक पृ. 704)

वहीं पर आगे कहा गया है- "शिवस्वरूप परमात्मा इस शरीर में ही प्रतिष्ठित है। इनको न जाननेवाला मूढ़ मनुष्य तीर्थ, दान, जप(कर्म-काण्डवाला जप), यज्ञ, काठ और पत्थर(की प्रतिमा)

1. स्कन्द पुराण में मानस तीर्थ की श्रेष्ठता को बताते हुए कहा गया है कि जिसने अपने इन्द्रिय समुदाय को वश में कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं। ध्यान से पवित्र तथा ज्ञानरूपी जल से भरे हुए, राग-द्वेषमय मल को दूर करनेवाले मानसतीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है, वह उत्तम गति को प्राप्त करता है।

निगृहीतेंद्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च।।
ध्यानपूते ज्ञान जले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।। (स्क. पु. का. ख. पू. 6/40-41)

में ही सर्वदा शिव को ढूँढ़ा करता है। साङ्कृते! (दत्तात्रेयजी का शिष्य)जो अपने भीतर नित्य – निरन्तर स्थित रहनेवाले परमात्मा की उपेक्षा करके केवल बाहर की स्थूल प्रतिमा का ही सेवन करता है, वह हाथ में रक्खे हुए अन्न के ग्रास को फेंककर अपनी कोहनी चाटता है। योगी पुरुष अपनी आत्मा में ही शिव का दर्शन करते हैं, प्रतिमाओं में नहीं। अज्ञानी मनुष्यों के हृदयों में भगवान् के प्रति भावना जाग्रत् करने के लिये ही प्रतिमाओं की कल्पना की गयी है।"[1] (जाबालदर्शनोपनिषद् 4/57 – 59, कल्याण, उपनिषद् – अंक पृ. 704)

योगराजोपनिषद् में चार प्रकार के योगों की चर्चा की गयी है – मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, और हठयोग। आसन, प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि ये चार योग के प्रमुख चरण हैं(योगराजोपानिषद् – 2)। चार प्रकार के योगों की चर्चा योगतत्त्वोपनिषद्(19) में भी की गयी है। वहींपर अष्टांग योग – यम, नियम, ... तथा समाधि – की भी चर्चा है(24, 25)। योगचूड़ामण्युपनिषद् में योग के छः अंग(यम – नियम को छोड़कर) स्वीकार किये गये हैं(2)। अमृतनादोपनिषद् में योग के प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, तर्क और समाधि(6) ये छः अंग स्वीकार किये गये हैं। संक्षेप में अनेक उपनिषदों में योगसाधन द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार की बाते बतलायी गयीं हैं।

भगवान् शिव के सगुणरूप का प्रादुर्भाव वेदों में ही हो गया था। उदाहरण के लिये अथर्ववेद में कहा गया है –

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव.....।। (अथर्ववे. 11/2/5 – 6)

अर्थात्– हे पशुपति शिव! आपके मुख को, तीन नेत्रों को, त्वचा को, रूप को, पृष्ठ देश को, अंगों को, उदर को, जिह्वा को और आस्यमण्डल आदि समस्त अंगों को नमस्कार है। यहाँ शिव के साकाररूप की कल्पना की गयी है। इसी तरह रुद्राध्यायी में कहा गया है –

..... नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च। (यजु. संहिता 16/28)

अर्थात्– नीलकण्ठ एवं श्वेत कंठवाले रुद्र को नमस्कार। यहाँपर शिव के नील एवं श्वेत कण्ठवाले साकाररूप की वन्दना की गयी है। भगवान् शिव नीलकण्ठी हैं और शिवा श्वेत कण्ठी। इसी कारण शिव के अर्द्धनारीश्वररूप की वन्दना ही उपरोक्त मन्त्र में की गयी प्रतीत होती है।

कैवल्योपनिषद् में कहा गया है –

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।

(कैवल्योपनिषद् 7)

---

1. **शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः।**
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः।। (जाबालदर्शनोपनिषद् 4/59)

अर्थात्– "उमासहित परमेश्वर को, प्रशान्तस्वरूप, त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव को, जो सब भूतों का मूल कारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्या से परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यान के द्वारा प्राप्त करते हैं।" यहाँपर भी भगवान् शिव को सगुण–साकाररूप में स्वीकार किया गया है। नीलरुद्रोपनिषद्(तीसरे खण्ड) में कहा गया है कि भगवान् शंकर अपने भक्तों के लिये नीलकण्ठस्वरूप धारण करते हैं, अपने निजजनों के लिये हरितवर्ण श्रीहरिरूप बन जाते हैं। इसी प्रकार अन्य उपनिषदों में भी भगवान् शिव को सगुण–साकाररूप में माना गया है। भक्ति के लिये साकाररूप की आवश्यकता होती है।

परमात्मा को भक्ति से जाना जा सकता है इसका उल्लेख हम श्वेताश्वतर उपनिषद् में पाते हैं। वहाँ कहा गया है कि परमात्मा का स्वरूप दृष्टि के सामने नहीं ठहरता। जब साधक मन के द्वारा उनका चिन्तन करता है, तब विशुद्ध अन्तःकरण में किसी–किसी समय उस परमेश्वर के स्वरूप की झलक–सी आती है, परन्तु वह निश्चल नहीं होती। इन परब्रह्म परमात्मा को कोई भी प्राकृत नेत्रों द्वारा नहीं देख सकता। जिसको वे परमात्मा स्वयं कृपा करके दिव्यदृष्टि प्रदान करते हैं, वही उन्हें देख सकता है। जो साधक इस रहस्य को समझकर अपने हृदय में स्थित इन अन्तर्यामी परमात्मा को उनके गुण एवं प्रभाव का श्रवण करके भक्तिभाव से द्रवित हृदय के द्वारा तथा निर्मल मन के द्वारा निरंतर उनका चिन्तन करके उन्हें जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं।(श्वेताश्वतर उप. 4/20)

वहीं पर आगे कहा है–हे रुद्र! आप स्वयं अजन्मा हैं, अतः दूसरों को भी मृत्यु–जन्म से मुक्त कर देना आपका स्वभाव है– यह समझकर कोई जन्म–मरण के भय से डरा हुआ साधक इस संसार–चक्र से छुटकारा पाने के लिये आपकी शरण लेता है। मैं भी इस संसार–चक्र से छुटकारा पाने के लिये ही आपकी शरण में आया हूँ; अतः जो आपका दाहिना मुख है, अर्थात् जो आपका परम शान्त कल्याणमयस्वरूप है, उसके द्वारा आप मेरी इस जन्म–मरणरूप महान् भय से सदा के लिये रक्षा करें। मुझे सदा के लिये इस भय से मुक्त कर दें।

अजात इत्येवं कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।। (श्वेताश्वतर उप. 4/21)

यहाँ उपरोक्त मंत्र में भगवान् शिव के साकार विग्रह(जो पंचानन है) के दक्षिण दिशावाले मुख को कल्याणकारी बताया गया है। उपनिषदों में शिव के साकार विग्रह की पूजा–अर्चना के अनेकों प्रमाण हैं जिनमें से कुछ का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। उपरोक्त मन्त्र में भक्ति के मूल तत्त्व शरणागति की भी चर्चा की गयी है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में ही अन्यत्र कहा गया है कि ईश्वर को भाव–भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है–

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।

कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।। (श्वेता. उप. 5/14)

अर्थात्-परब्रह्म आश्रयरहित(अर्थात् शरीररहित) हैं, यह प्रसिद्ध है; तथा वे जगत् की उत्पत्ति और संहार करनेवाले तथा(प्रश्नोपनिषद् 6/6/4 में बतायी हुई) सोलह कलाओं को भी उत्पन्न करनेवाले हैं। ऐसा होनेपर भी वे कल्याणस्वरूप परमेश्वर(शिव) श्रद्धा, भक्ति और प्रेमभाव से पकड़े जा सकते हैं। जो मनुष्य उन परमदेव को जान लेता है वह शरीर से अपना संबंध सदा के लिये छोड़ देता है। अर्थात् इस संसार-चक्र से सदा के लिये छूट जाता है।

भक्तिमार्ग में नाम-जप का बड़ा महत्त्व है। रुद्रहृदयोपनिषद् में कहा गया है कि-

धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः।।
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैःप्रमुच्यते। (रुद्रहृदयोपनिषद् 16-17)

भावार्थ यह है कि धर्म रुद्रस्वरूप है, जगत् विष्णुस्वरूप है और समस्त ज्ञान ब्रह्मास्वरूप है। 'श्रीरुद्र रुद्र रुद्र' इस प्रकार से जो बुद्धिमान् जपता है, इससे समस्त देवों का कीर्तन हो जाने से वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

शिवोपनिषद् में कहा गया है-

नामसंकीर्तनादेव शिवस्याशेषपातकैः।
यतः प्रमुच्यते क्षिप्रं मन्त्रोऽयं द्व्यक्षरः परः।।
यः शिवं शिवमित्येवं द्व्यक्षरं मन्त्रमभ्यसेत्।
एकाक्षरं वा सततं स याति परमं पदम्।।

(शिवोपनिषद 1/20-21)

भावार्थ यह है कि भक्ति-भावपूर्वक 'शिव' के नाम-संकीर्तन से शीघ्र ही समस्त पापों से निवृत्ति और शिव-पद की प्राप्ति हो सकती है।

शरभोपनिषत् में कहा गया है कि रुद्र के ध्यान-पूजा से सभी लोगों को सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। भगवान् शिव भव-बंधन से छुड़ानेवाले हैं, इसलिये सदैव उनका ध्यान(या उपासना) करना चाहिये।

स एको रुद्रो ध्येयः सर्वेषां सर्वसिद्धये।
शिव एव सदाध्येयः सर्व संसार मोचकः। (शरभोपनिषत् 7 तथा 31)

पाशुपतब्रह्मोपनिषद् में रुद्र को समस्त यज्ञों का कर्त्ता बताया गया है(**समस्त यागानां रुद्रः पशुपतिः कर्त्ता-** श्लोक 1)। भावार्थ यह है कि यज्ञफल पानेवाले को रुद्रोपासना करनी चाहिये। त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में शिव को परमपद(पहला उपनिषत्) कहा गया है। भस्मजाबालोपनिषत् में कहा गया है कि शिव के विग्रह का ध्यान करने से व्यक्ति पापों से छूट जाता है(अध्याय-2)। इसी

प्रकार नारदपरिव्राजकोपनिषत् में भगवान् शिव को सभी देवों का उपास्य बताया गया है(9/17)।

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव की उपासना से व्यक्ति पापों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

अथर्वशिखोपनिषत् में ध्यान-संबंधी सनत्कुमार आदि के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अथर्वण ऋषि कहते हैं कि-

ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्। सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते ..... कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः। सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्ये। (अथर्वशिखो.-3)

यहाँपर 'ध्यायीतेशानम्' से शिवजी को ध्यान योग्य अथवा ध्यान का विषय बताया गया है। तदनन्तर शिव से इतर सम्पूर्ण देवताओं की उपेक्षाकर शिवजी का ही ध्यान करना चाहिये, यह दिखाने के लिये ही इस प्रकार का पदविन्यास प्रयुक्त किया गया है। सब देवताओं में प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार में नियुक्त हैं; किन्तु वे भी भूत एवं इन्द्रिय आदि के समान परमेश्वर से उत्पन्न होते हैं। सब कारणों के कारण शिवजी कदापि उत्पत्ति, विनाश आदि विकारों को प्राप्त नहीं होते। इस प्रकार सब देवताओं से शिवजी की विशिष्टता का निश्चय कर, उपपत्तिपूर्वक वे सबके ध्येय हैं, ऐसा उपसंहार किया है।

भक्तिमार्ग में जप, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन एवं इनसे संबंधित कुछ कर्मकाण्ड होते हैं। तीर्थाटन के संबंध में रामोत्तरतापनीयोपनिषद्, जाबालोपनिषद् एवं मुक्तिकोपनिषद् में काशीतीर्थ की महिमा बतायी गयी है। वहाँ पर कहा गया है कि-

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु.....
अविमुक्तं न विमुञ्चेत् ..... ।

(रामोत्तर. उप. 1 एवं जाबालोपनिषद् 1)

भावार्थ यह है कि यहाँ(काशी में) जीव के प्राण निकलते समय उसे भगवान् रुद्र तारकब्रह्म का उपदेश करते हैं, जिससे वह अमृतमय होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसलिये अविमुक्त का ही सेवन करें। अविमुक्त(काशी) तीर्थ को कभी न छोड़ें।

.....यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः।।
जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत्।
निर्धूताशेषपापौघो मत्सारूप्यं भजत्ययम्।। (मुक्ति. उप. 20-21)

भावार्थ यह है कि काशीक्षेत्र में चाहे कहीं भी मृत्यु हो, शंकरजी प्राणी के दाहिने कान में मेरे(भगवान् राम के) तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं, जिससे उसके सारे पापों के समूह झड़ जाते हैं, तथा वह मेरे सारूप्य को प्राप्त हो जाता है।

भस्मजाबालोपनिषत् में काशी को मुक्तिस्थान मानते हुए भी यह कहा गया है कि यहाँपर जो

मल-मूत्र त्यागते, प्रतिग्रह में रत रहते, भस्म एवं रुद्राक्ष से रहित होते, जो सोमवार व्रत तथा यज्ञादि नहीं करते, जो विश्वेश्वर की पूजा नहीं करते, पंचाक्षर का जप नहीं करते तथा भैरव की अर्चना नहीं करते उनकी पहले घोर भैरवी नरक की यातना भोगने के बाद शुद्धि होती है और फिर शिव की प्राप्ति होती है।

ये चान्ये काश्यां पुरीषकारिणः प्रतिग्रहरतास्त्यक्तभस्मधारणास्त्यक्त रुद्राक्षधारणा -स्त्यक्तसोमवारव्रतास्त्यक्तग्रहयागास्त्यक्तविश्वेश्वरार्चनस्त्यक्त पञ्चाक्षरजपा-स्त्यक्तभैरवार्चना भैरवीं घोरदियातनां नाना विधां काश्यां परेता भुक्त्वा ततः शुद्धा मां प्रपद्यन्ते च।(अध्याय-2)

आग्नेय, वारुण, मान्त्र, वायव्य, ऐन्द्र, मानस, शान्ति(क्षमा) और ज्ञान-ये आठ प्रकार के स्नान यथा अवसर तथा यथायोग्य शिवोपासकों को करना चाहिये। रुद्रमन्त्र से विधिवत् विनिर्मित भस्म-विलेपन का नाम 'आग्नेय' स्नान है। जलस्नान 'वारुण' स्नान है। यह स्नान तीन बार प्रतिदिन करना चाहिये। मूर्धा को हाथ से स्पर्श करते हुए शिव के ध्यानपूर्वक एकादश शिवनामोच्चारण 'मान्त्र' स्नान है। वातनिक्षिप्त गोपदरजस्नान 'वायव्य' स्नान है। सूर्यालोक की स्थिति में बरसते हुए जल से 'एन्द्री' दिशा में स्थित होकर किया जानेवाला स्नान 'एन्द्र' स्नान है। सर्वतीर्थों का स्मरण करते हुए हाथ से जल ग्रहण कर सिरपर छिड़कना 'मानस' स्नान है। भीषण ताड़ना और तिरस्कार प्राप्त होनेपर भी अनुद्विग्न और आक्रोशरहित रहना 'क्षमा' स्नान है। तीर्थयात्रियों, योगियों, तपस्वियों और ब्रह्मवेत्ताओं को जिस फल की प्राप्ति होती है उसी फल की प्राप्ति क्षमाशील को होती है-

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरांस्यायतनानि च।
तेषु स्नातस्य यत् पुण्यं तत्पुण्यं क्षान्तिवारिणा।।
यैव ब्रह्मविदां प्राप्तिर्यैव प्राप्तिस्तपस्विनाम्।
यैव योगाभियुक्तानां गतिः सैव क्षमावताम्।। (शिवोपनिषद् 5/37, 40)

शिव-ज्ञान से स्नान 'ज्ञान-स्नान' है। शिवविज्ञानी सूर्यरश्मिवत् नित्य शुद्ध रहता है-

ज्ञानामलाम्भसा स्नातः सर्वदैव मुनिः शुचिः।
निर्मलः सुविशुद्धश्च विज्ञेयः सूर्यरश्मिवत्।। (शिवोपनिषद् 5/41)

शिवोपनिषद् के अनुसार शिवोपासना के लिये जल, मन्त्र, दया, दान, सत्य, इन्द्रियसंयम, ज्ञान, भावात्मशुद्धिरूप अष्टविध शौच का नित्य ही आलंबन लेना चाहिये -

जलं मन्त्रं दया दानं सत्यमिन्द्रियसंयमः।
ज्ञानं भावात्मशुद्धिश्च शौचमष्टविधं श्रुतम्।। (शिवोपनिषद् 5/44)

शिवार्चन में भस्म एवं रुद्राक्ष का बड़ा ही महत्त्व माना गया है। जाबाल्युपनिषद् में पाशुपत मत की व्याख्या करते समय पशुपति के ज्ञान हेतु विभूति धारण करने को कहा गया है। वहाँपर विभूति

धारण करने की विस्तृत विधि भी बतायी गयी है। इस विधि का ऊपर उल्लेख हो चुका है। बृहज्जाबाल(3, 4 ब्राह्मण), कालाग्निरुद्र, अथर्वशिरस्(3/5), भस्मजाबाल(अध्याय 1), शिवोपनिषद्, सिद्धांतशिखोपनिषद्, रुद्रोपनिषद् जैसे अनेक उपनिषदों में भस्मधारण की विधि एवं महात्म्य को बतलाया गया है।

शिवोपासना में रुद्राक्ष मुख्य अंग है। इस कारण रुद्राक्ष का विशेष महत्त्व बताया गया है। रुद्राक्षजाबाल आदि उपनिषदों में इसकी उत्पत्ति, प्रकार एवं धारणविधि का विस्तार से वर्णन है। त्रिपुरासुर के वध के समय भगवान् शिव की आँखों से अश्रुबिन्दु गिरे जिनसे रुद्राक्ष की उत्पत्ति हुई। इस घटना का विस्तृत वर्णन शिवपुराण एवं देवीभागवत आदि पुराणों में पाया जाता है।

रुद्राक्ष वर्णों के अनुकूल चार प्रकार के होते हैं- श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण। श्वेत ब्राह्मण को, रक्त क्षत्रिय को, पीत वैश्य को तथा कृष्ण शूद्र को धारण करना चाहिये। रुद्राक्षजाबाल उप. के अनुसार रुद्राक्ष सभी-वर्णों को धारण करना चाहिये क्योंकि यही शिवजी की आज्ञा है।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया। (1/8)

यही बात शिवपुराण की विद्येश्वरसंहिता(25/47) में कही गयी है। रुद्राक्ष एक से चौदह मुखतक के होते हैं। जिस रुद्राक्ष में स्वंय छिद्र होता है उसे उत्तम तथा जिसमें व्यक्ति छेद करता है वह मध्यम कोटि का माना गया है(रुद्राक्षजाबाल 1/12-13)। शिवपुराण तथा देवीभगवत में भी रुद्राक्षधारण संबन्धी विधि तथा उनके फलों का वर्णन रुद्राक्षजाबालोपनिषद् के समान ही किया गया है। एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप, द्विमुखी साक्षात् अर्धनारीश्वररूप, त्रिमुखी तीन अग्नियों का रूप, चतुर्मुखी साक्षात् ब्रह्माजी का स्वरूप, पंचमुखी पंचदेवस्वरूप, षण्मुखी कार्तिकेयस्वरूप, सप्तमुखी अनंग नामवाला, अष्टमुखी साक्षात् विनायक, नवमुखी नवदुर्गारूप, दशमुखी साक्षात् जर्नादनरूप, एकादशमुखी साक्षात् रुद्र, द्वादशमुखी साक्षात् महाविष्णुरूप, त्र्योदशमुखी विश्वदेवरूप तथा चतुर्दशमुखी भगवान् शिव का नेत्रस्वरूप है।(रुद्राक्षजा. उ. 2/1-16)

रुद्राक्ष धारण करनेवाले को निम्नलिखित पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये-

मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः।। (रुद्राक्षजाबाल. उप. - 2/17)

अर्थात्- रुद्राक्ष धारण करनेवाले को मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहजन, लिसोड़ा और विड्वराह (ग्राम्य सूकर)-इन पदार्थों का परित्याग कर देना चाहिये।

भगवान् शिव की (सगुण-साकार-विधि से की जानेवाली) पूजा मूर्ति एवं लिंग दोनों रूपों में होती है। साथ ही शिवपरिवार के अन्य सदस्यों की भी पूजा होती है। शिवपरिवार के प्रमुख सदस्यों में देवी, गणेश, नन्दी, कार्तिकेय आदि हैं। केनोपनिषद्(3/12), मैत्रेयी सं.(2/9/1/4), महानारायणोपनिषद्(2/12, 13, 14; 12/4), कैवल्योपनिषद्(7) आदि अनेक स्थानों पर देवी

उमा या गौरी आदि का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार नन्दी तथा गणेश का उल्लेख भी अनेक स्थलों यथा महानारायणोपनिषद्(2/3, 4, 11, इत्यादि), बोधायन गृह्यसूत्र (3/3/10, 11, 12, 13, 14), गणेशपूर्वता. उप.(1/5), गणपत्युपनिषद्(प्रथमखण्ड) में पाया जाता है। इसी प्रकार कार्तिकेय का उल्लेख भी महानारायणोपनिषद्(2/5), मैत्रेयीसंहिता (2/9/1/5), तैत्तिरीयआरण्यक(10/1/6), जाबालदर्शनोपनिषद् तथा जाबाल्युपनिषद् इत्यादि में अनेक स्थलों पर हुआ है।

शिवलिंग का उल्लेख भी अनेक उपनिषदों में हुआ है। उदाहरण के लिये नारायणोपनिषद्[1] (3/16) जहाँपर **'शिवाय नमः। शिव लिंगाय नमः।'** कहा गया है, इसी प्रकार रुद्रोपनिषद् में शिवलिंग के माहात्म्य को दर्शाते हुए कहा गया है कि चाण्डाल भी लिंगार्चन कर ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ हो जाता है।

शिवलिंगार्चनयुतश्चाण्डालोऽपि स एव ब्राह्मणाधिको भवति।

(रुद्रोपनिषद्)

नारायणोपनिषद्(चौखम्बासंस्करण) एवं लिंगोपनिषद् में भगवान् शिव के अनेक प्रकार के लिंगों का उल्लेख है – उर्ध्वलिंग, सुवर्णलिंग, दिव्यलिंग, भवलिंग, शर्वलिंग, आत्मलिंग, ओंकारलिंग, वाणलिंग, प्रणवलिंग इत्यादि। वास्तव में संसार में जो कुछ स्थावर – जंगम है वह सब शिव की विभूति होने के कारण लिंगरूप ही है। इसी कारण ग्रन्थों में नाना प्रकार के लिंगों की कल्पना की गयी है। शिव पुराण में भी उपरोक्त कई प्रकार के लिंगों की चर्चा की गयी है।

विद्वानों ने शिवलिंग के कई अर्थ बताये हैं। यथा– पहला अर्थ ज्ञापक अर्थात् प्रकट करनेवाला है। क्योंकि निर्गुण शिव के व्यक्त होने से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। दूसरा अर्थ आलय है, अर्थात् यह प्राणियों का परमकारण है और निवासस्थान है। तीसरा अर्थ है **'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्',** अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायँ वह परमकारण लिंग है। शिवपुराण में लिखा है कि एकमात्र शिव ही निर्गुण – निराकार होने से निष्कल हैं; निष्कल होने से ही शिव का निराकार(आकारविशेषशून्य) लिंग ही पूज्य होता है। शिव सकल एवं निष्कल दोनों ही हैं। अत: उनका निराकार लिंग और साकार स्वरूप दोनों ही पूज्य होते हैं। शिव से समस्त विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त में उनका लय होता है। सबके आश्रय होने से और सबके लय का अधिष्ठान होने से भगवान् शिव ही लिंग कहलाते हैं। अथवा कार्य द्वारा कारणरूप से लिंगित या अवगत होने से ही भगवान् 'लिंग' शब्द द्वारा पुकारे जाते हैं।

पुन: कूटस्थ स्थाणु परब्रह्म ही शिव हैं। स्थाणु(ठूँठ) लिंगरूप में व्यक्त शिव हैं, शिवा जलहरी हैं। शिवलिंग का कुछ अंश जलहरी से ग्रस्त होता है, यही योनिग्रस्त लिंग कहलाता है। अर्थात् प्रकृति

1. नारायणोपनिषद् के अलग – 2 पाठ मिलते हैं। उपरोक्त पाठ, **'ईशादिअष्टोत्तरशतोपनिषद्'** जो चौखम्बा विद्या भवन से 1991 में प्रकाशित है, से लिया गया है।

से युक्त परमेश्वर कहलाता है–

पीठमम्बामयं सर्वंशिवलिंग च चिन्मयम्।

लिंग का ऊपर का अधिकांश अंश, जो योनि से बाहर होता है, प्रकृति से परे होता है। प्रकृति से युक्त परम ब्रह्म ही सर्वकर्त्ता तथा सर्वफलदाता है। जबकि प्रकृति से परे निर्गुण केवलस्वरूप ब्रह्म उदासीन होता है। शुद्ध शिवतत्त्व त्रिगुणातीत है। इसीलिये शिवलिंग, जिसमें शिव–शक्ति दोनों ही अंकित होते हैं, की पूजा की जाती है।

भस्मजाबालोपनिषत् में ब्राह्मणके कर्त्तव्य बताते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि उसे(अन्य बातों के अतिरिक्त) शिवलिंग की त्रिकाल अर्चना करनी चाहिये। इसके बाद कुश के आसन पर बैठकर साम्बशिव का(सगुण–निर्गुण) ध्यान कर रुद्रसूक्त(शतरुद्रिय के मन्त्र) द्वारा लिंग का श्वेत भस्म से अभिषेक करना चाहिये तथा सूखे अथवा गीले त्रिदलयुक्त बिल्वपत्र को भी चढ़ाना चाहिये।

शिवलिङ्गं त्रिसंध्यमभ्यर्च्य कुशेष्वासीनोध्यात्वा साम्बं मामेव वृषभारूढं हिरण्यबाहुं ..... अनाद्यन्तं रुद्रसूक्तैरभिषिच्य सितेन भस्मना श्रीफलदलैश्च त्रिशाखैरार्द्रैरनार्द्रैर्वा।(अध्याय–2) इसके पश्चात् अन्य मन्त्रों के अलावा पंचाक्षर मन्त्र को जपना चाहिये।

भगवान् शिव की उपासना में बिल्वपत्र का बड़ा माहात्म्य माना गया है। भगवान् शिव को बिल्वपत्र बहुत ही प्रिय हैं। बिल्व के पेड़ की भी शैवों ने बहुत महिमा गायी है। उपनिषदों में भी इनके महत्त्व की चर्चा की गयी है। उदाहरण के लिये जाबालदर्शनोपनिषद्(5/4) में आत्मशुद्धि या नाड़ी–शुद्धि के उपाय बताते हुए कहा गया है कि इस उपाय को पर्वत–शिखर, नदी–तट, बिल्ववृक्ष के समीप, एकान्त वन अथवा किसी पवित्र एवं मनोरम स्थान में अपनाना चाहिये। स्पष्ट है कि यहाँपर बिल्ववृक्ष को पवित्र एवं सिद्धि देनेवाला स्वीकार किया गया है। बिल्वोपनिषद् में इस प्रश्न के उत्तर में कि सभी पापों से मुक्त हो शिव–सायुज्य किस वस्तु द्वारा पूजा किये जानेपर प्राप्त हो सकता है? ऐसी एक कौन–सी वस्तु है जिससे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? भगवान् शिव कहते हैं–

न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन।
मत्स्वरूपस्त्वयं ज्ञेयो बिल्ववृक्षो विधानतः
एकेन बिल्वपत्रेण संतुष्टोऽस्मि महामुने।। (बिल्वोपनिषद्)

भावार्थ यह है कि बिल्ववृक्ष भगवान् शिव का स्वरूप है तथा मात्र एक बिल्वपत्र द्वारा पूजा करने पर भगवान् शिव प्रसन्न हो जाते हैं। आगे पूजा–विधि की चर्चा के दौरान यह कहा गया है कि बिल्व–पत्र के बिना पूजा सदैव व्यर्थ हो जाती है।

बिल्वपत्रं बिना पूजा व्यर्थाभवति सर्वदा। (बिल्वोपनिषद्)

बिल्वोपनिषद् में बिल्व की महिमा का सर्वत्र व्याख्यान किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पुराणों में बिल्वपत्रों को जो महत्त्व दिया गया है उसका आधार भी उपनिषद ही है।

उपनिषदों में पंचाक्षर मंत्र की भी बहुत ही महिमा बतायी गयी है। त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में कहा गया है कि पंचाक्षर तथा यजुर्वेद के मन्त्रों(रुद्रि) द्वारा शिवोपासना करनेवाला रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है। मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वं प्राप्नोति। कल्याणं प्राप्नोति।

(चौथा उपनिषत्)

पंचब्रह्मोपनिषद् में कहा गया है कि भगवान् शिव, जो परब्रह्मस्वरूप हैं, पंचाक्षरमय हैं। इस तथ्य को जानकर पंचाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये।

पञ्चाक्षरमयं शंभुं पर ब्रह्मस्वरूपिणम्।
नकारादियकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरं जपेत्। (24, 25)

भस्मजाबालोपनिषद् में पंचाक्षर मन्त्र को सर्वश्रेष्ठ एवं तारक मन्त्र कहा गया है।

.....परमो मन्त्रः। तारकोऽयं पञ्चाक्षरः (अध्याय - 2)

आगे काशी के सन्दर्भ में कहा गया है कि वहाँ पर शैव लोग मुक्तिप्राप्ति के लिये पंचाक्षर मन्त्र का उपदेश करते हैं।

तत्रैव मुक्त्यर्थमुपदिश्यते शैवोऽयं मन्त्रः पञ्चाक्षरः। (अध्याय-2)

वहीं पर यह भी कहा गया है कि ॐकार के साथ पंचाक्षर मन्त्र के जप से कल्याण(मोक्ष) प्राप्त होता है।

उपसंहार

उपनिषदों में शिव या रुद्र संबन्धी विचार उत्कृष्टता को प्राप्त कर चुका था। रुद्र की प्रधानता का परिचय हमें छान्दोग्य, बृहदारण्यक, मैत्रेयी, महानारायणोपनिषद्, नृसिंहोत्तरतापनि, केन, श्वेताश्वतर आदि प्राचीन उपनिषदों तथा अथर्वशिरस्, रुद्रहृदय, नीलरुद्र, कैवल्य, रुद्र, गर्भ, जाबालि, बिल्व, लिंग, शिव, भस्मजाबाल, रुद्राक्षजाबाल, बृहज्जाबाल, इत्यादि बाद की उपनिषदों में मिलता है। इन उपनिषदों में भगवान् शिव को परब्रह्म, सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्त्ता स्वीकार किया गया है। उनकी उपासना से ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

प्रारम्भ की उपनिषदों में साम्प्रदायिकता का अभाव होने के कारण ही प्राचीन आचार्यों द्वारा उनके उद्धरण दिये गये हैं। बाद की कुछ उपनिषदों पर शैव, कुछ पर शाक्त तथा कुछ पर वैष्णव आदि मतों के प्रभाव मिलते हैं। इतना होनेपर भी बहुत सी शुद्ध वैष्णव उपनिषदों जैसे रामोत्तरतापनीयोपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, नारायणोपनिषद्, श्रीकृष्णोपनिषद् आदि में भी शिवमाहात्म्य का संक्षिप्त परिचय मिलता है।

उपनिषदों में निर्गुण शिव के साथ-साथ सगुण शिव की भी कल्पना प्राप्त होती है। शिव की अष्टमूर्तियों के उल्लेख भी वहाँ प्राप्त होते हैं। सगुण-साकार की उपासना के साथ-साथ लिंगोपासना

का भी परिचय हमें उपनिषदों में प्राप्त होता है। भगवान् शिव की प्राप्ति के ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं योग आदि साधनों का वर्णन भी वहाँ प्राप्त होता है। सगुण उपासना के संदर्भ में भस्म, रुद्राक्ष, बिल्वपत्र, काशीतीर्थ की महिमा एवं उनके उपयोग की विधि का भी सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। उपासना के सन्दर्भ में कहीं-कहीं इस बात पर जोर दिया गया है कि 'इस साधन' के अतिरिक्त अन्य सभी साधन तुच्छ हैं। जहाँपर ऐसी बातें मिलती हैं उससे यह नहीं समझना चाहिये कि अन्य साधन सचमुच में व्यर्थ हैं।

जब किसी साधन का उपदेश दिया जाता है तो वह उपदेश लेनेवाले की योग्यता, क्षमता, रुचिआदि के संदर्भ में होता है। उदाहरण के लिये बुद्धि-प्रधान, सतोगुणी, आत्मविश्वासी, वीतरागी, चिन्तन-प्रधान, साधन चतुष्टय सम्पन्न[1] व्यक्ति के लिये ज्ञान-मार्ग (जिसमें चिन्तन एवं ध्यान प्रमुख होता है); रजोगुणी, बहिर्मुखी प्रवृत्तिवाला, चंचल, वासना-प्रधान व्यक्तित्व के लिये कर्मयोग; भावना या भाव-प्रधान, न तो पूर्णतया बहिर्मुखी हो और न ही पूर्णतया अन्तर्मुखी, सरल, कोमल एवं सरस हृदयवाले व्यक्ति के लिये भक्तिमार्ग एवं सतोगुणी, बलिष्ठ शरीरवाले, अन्तर्मुखी, वीतरागी, दृढ़ संकल्प-वाले, आत्मविश्वासी व्यक्ति के लिये योगमार्ग सबसे श्रेष्ठ मार्ग माना जाता है। ऊपर बताए गुणों से युक्त व्यक्तित्त्ववालों को उनके अनुसार ही साधन-मार्ग का उपदेश सर्वोत्कृष्ट माना जायगा। परन्तु इससे यह नहीं समझा जाना चाहिये कि दूसरे साधनों से सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। यथार्थतः सभी साधन एक ही लक्ष्यतक पहुँचाते हैं। परन्तु यह जरुरी नहीं है कि हर व्यक्ति एक ही प्रकार का साधन करे। क्योंकि साधन करने की योग्यता सबमें अलग-अलग होती है। किसी को ज्ञान तो किसी को भक्ति से तो किसी को योग-साधन से शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है। कहा जाता है कि अनेक जन्मों की साधना के उपरान्त ही सिद्धि प्राप्त होती है (गीता 6/45)। पिछले जन्मों से व्यक्ति जिस तरह की साधना करता आ रहा है उसी तरह की साधना वर्त्तमान जन्म में शीघ्र सिद्धी प्रदान करती है अतः उसके लिये उसी प्रकार की साधना सर्वोत्तम होगी। पिछली साधना के अनुसार ही उसकी रुचि, व्यक्तित्व, सुविधा, गुरु आदि की प्राप्ति वर्त्तमान जन्म में होती है। हर एक गुरु अलग-अलग मार्गों से सिद्धि को प्राप्त किया हुआ होता है और उसी मार्ग का वह उपदेश अपने शिष्यों को देता है।

पुनः यह भी नहीं समझना चाहिये कि प्रत्येक मार्ग एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र हैं। सच तो यह है कि ज्ञान, भक्ति, कर्म तथा योग-इन सभी साधनों का प्रयोग हर-एक व्यक्ति करता है चाहे वह ज्ञानमार्गी है या कर्म या भक्ति या योगमार्गी है। परन्तु ज्ञानमार्गी में ज्ञान की प्रधानता, कर्ममार्गी में कर्म की प्रधानता, भक्तिमार्गी में भाव की प्रधानता तथा योगमार्गी में ध्यान की प्रधानता होती है। इसी कारण कुछ विद्धान्, जैसे महर्षि अरविन्द, सभी साधनों को एक दूसरे का पूरक मानते हैं। शुद्ध

1. ऐसा व्यक्ति जिसमें नित्यानित्यवस्तुविवेक हो; सभी प्रकार के भोगों-सांसारिक एवं स्वर्गीय-से निवृत्त हो; शम, दम, तितिक्षा, उपरति, उपराम और श्रद्धा रूपी षडसंम्पत्तियुक्त हो तथा मोक्षप्राप्ति की तीव्र इच्छा से भी अभिभूत हो।

ज्ञान बिना भक्ति, कर्म एवं ध्यान के कैसे फलदायी होगा? इसी प्रकार योग की सफलता के लिये भी भक्ति, भाव, ज्ञान एवं कर्म की सहायता आवश्यक है। कहने का अभिप्राय यह है कि हर व्यक्ति के लिये कोई एक साधन प्रमुख होता है तथा अन्य साधन गौण होता है। ऐसा नहीं होता कि केवल एक ही साधन का व्यक्ति उपयोग करके सिद्धि को प्राप्त कर जाय।

संक्षेप में उपनिषदों में कहीं भक्तिपर कहीं ज्ञानपर और कहीं योगपर बल दिया गया है। जिसका तात्पर्य अन्य मार्गों की हीनता दिखाना नहीं है यद्यपि उनकी भाषा कहीं – कहीं ऐसी लगती है। ऐसे स्थलों को अगर हम उसी उपनिषद् के अन्य प्रसंगों के साथ रखकर समझने का प्रयास करेंगे तो जैसा ऊपर कहा गया है वैसा ही निष्कर्ष प्राप्त होगा।

(प्रस्तुत निबंध मुख्यरूप से निम्नलिखित ग्रन्थों पर आधारित है:

1. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी द्वारा 1991 में प्रकाशित तथा वासुदेव लक्ष्मण पनशिकर द्वारा संपादित 'ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्'।

2. मोतीलाल बनारसीदास द्वारा 1984 में प्रकाशित तथा पं. जगदीश शास्त्री द्वारा संपादित 'उपनिषत्संग्रह'।

3. गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण का 'उपनिषद् – अंक')

s s s s s s s s

मांसाहार न करने की प्रशंसा

इष्टं दत्तमधींत च क्रतवश्च सदक्षिणाः।
अमांसभक्षणस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।
सर्वे वेदा न तत् कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत।
यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्तते।।

यज्ञ, दान, वेदाध्ययन तथा दक्षिणासहित अनेकानेक क्रतु (यज्ञ) – ये सब मिलकर मांस – भक्षण के परित्याग की सोहलवीं कला के बराबर भी नहीं होते।

(महाभारत, अनुशासनपर्व, गीताप्रेस, अध्याय 145 दक्षिणात्यपाठ अ. 11 पृ. 5990)

भारत! जो पहले मांस खाता रहा हो और पीछे उसका सर्वथा परित्याग कर दे, उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे सम्पूर्ण वेद और यज्ञ भी नहीं प्राप्त करा सकते।

(महाभारत, अनुशासन पर्व 115/116)